आधुनिकता को अपना नही पाये, उसके लिये ज़मीन तैयार नहीं थी; कुछ आधुनिकता के मोह मे इतने उच्छृङ्खल हो गये कि अनुप्रेरणा की धारा को सिलसिलेवार तरीके से क़ायम न रख सके, इसलिये उनकी सृष्टि विश्वामित्र की दृष्टि की तरह एक अजीबोग़रीब सृष्टि हो गई जो न आधुनिक ही हुई न कविता।

पाश्चात्य प्रभाव

इसमें सन्देह नही कि भारतीय साहित्य में हम आधुनिक युग तभी से गिन सकते हैं जब से उस पर पाश्चात्य प्रभाव पड़ा। यह बात हिन्दी, बॅंगला, मराठी सभी साहित्य के सम्बन्ध मे सत्य है। पाश्चात्य की तीव्र रोशनी जब अकस्मात् हमारी जाति की मन्थर चेतना पर पड़ी तो उसके सारे अस्तित्व मे एक बिजली-सी दौड़ गई, प्रतिक्रिया की क्रिया फ़ौरन शुरू हुई। इस आकस्मिक रोशनी के प्रहार से कहीं-कही तो गुमराही आ गई। इस युग के बॅंगला कविगणो मे श्रेष्ठ ईश्वर गुप्त और रंगलाल गुमराह नही हुए, किन्तु क्यो? "वह इसलिये कि इन दोनो मे से एक भी अच्छी तरह जग नही पाये थे, एक तो जमुहाई लेते हुए चुटकी बजाते ही रह गये दूसरे ने इस रोशनी की एक झलक देखकर ही किवाड़े बन्द कर लिये, और अपने कमरे के स्तिमित मिट्टी के दिये को बढ़ाने की चेष्टा करने में रह गये।"

861-H
601

ईश्वर गुप्त

ईश्वरचन्द्र गुप्त की एक कविता लीजिये

आर कबे भाइ मानुष हबे।
देखे तोर आकार-प्रकार, आचार-विचार
मानुष कबे, मानुष हबे?
होते चाओ मानुष यदि भ्रान्ति नदी
एइ बेला पार हओ रे तबे?

142259

नयने छोटो बड़ो देखबे जारे
तुषबे तारे प्रिय रबे
जाते हाड़ि मुचि सबाई सुचि
समभावे भावबे सबे

भावार्थ—"अब तू कब आदमी होगा, तुझे जो सूरत से मै देखता हूँ तो हर तरीके से आदमी ही मालूम होता है, लेकिन तू यथार्थ मे आदमी कब होगा ? अगर तुझे सचमुच आदमी ही होना है तो भ्रान्ति-रूपी नदी को पार कर के आदमी क्यों नहीं बन जाता ? जिनको तू छोटा बड़ा करके देखता है उनको भी मीठी वाणी से तुष्ट रख, जाति से चाहे कोई डोम या चमार ही हो, उसे बराबर करके ही सोचे।"

साम्य, मैत्री, स्वाधीनता

ईश्वर गुप्त की इस कविता मे हम साम्य, मैत्री स्वाधीनता (*Liberty, equality, fraternity*) का सन्देश चाहे तो पढ़ सकते है, किन्तु भाषा कितनी अक्षम है तथा ज़बान कितनी दबी हुई है। यह जो कहा गया है ईश्वर गुप्त ठीक-ठीक जगे नही यह ठीक ही मालूम पड़ता है। रंगलाल् की कविता का भी यही हाल है।

प्राच्य और पाश्चात्य

प्राच्य और पाश्चात्य के सम्बन्ध मे बहुत-सी बातें तथा पुस्तके तुलनात्मक रूप से लिखी गई हैं, किन्तु मेरा ख्याल है जो पहिले-पहल पाश्चात्य का प्रभाव प्राच्य पर पड़ा, और प्राच्य उससे तिलमिलाकर बिलबिला उठा, उसकी वजह यह नही थी कि पाश्चात्य ने जो कुछ दिया वह विलकुल कोई मौलिक रूप से नई चीज़ थी, बल्कि सच बात तो यह है कि दोनो के घनत्व या गति में (*Intensity and speed*) आकाश-पाताल का प्रभेद था। यदि इस दृष्टि से प्राच्य सभ्यता का प्रतीक हम तख्ते-ताऊस को मानें तो पाश्चात्य का प्रतीक हमें लिफ्ट को मानना पड़ेगा। साम्य, मैत्री, स्वाधीनता वाले

आदर्श को ही लिया जाय; क्या यह भारतवर्ष में नहीं है या नहीं था ? वसुधैव कुटुम्बकम आदर्श कही और का थोड़े ही है, किन्तु जहाँ एक तरफ यह आदर्श था वही दूसरे तरफ़ कार्यक्षेत्र मे जाति भेद की भीषण चीनी दीवार थी जो मनुष्य के साथ मनुष्य को बिलकुल बिलग कर देती थी। परिया शब्द विश्व के शब्दकोष में भारतवर्ष का ही दान है। बड़े-बड़े आदर्श यहाँ थे, किन्तु वे परमहंसों के लिये थे, साधारण मनुष्य तो वही सैकड़ो प्रकार के भेद में पड़ा रहता था, वह वसुधैव कुटुम्बकम वालो परमहंसो को सिर उठाकर देखता भर था। जैसे पहाड़ पर चढ़े हुए मनुष्य को समतल का मनुष्य देखता है। उसके दिनानुदैनिक जीवन के साथ उसका ना तो कोई संस्पर्श था न सम्पर्क। ईश्वर गुप्त या उनके समकालीन कवियो मे हम पाश्चात्य की इसी द्रुतता तथा जीवन में सिद्धान्त को अनुवाद करने की बल्कि जीवन मे नये प्रयोग करने की व्यग्रता का कुछ पुट पाते हैं। इसी कारण हम उन्हे मोटे तौर पर प्रथम आधुनिक बँगला कवि मान सकते है। मोटे तौर पर इसलिए कहा गया कि जिस तरह यह कहना कठिन ही नही असंभव है कि रात्रि किस मुहूर्त मे खतम होकर प्रभात शुरू हुआ उसी तरह यह कहना कठिन है कि पाश्चात्य प्रभाव कब से बँगला साहित्य मे किसको वाहन बनाकर दृष्टिगोचर होने लगा।

पाश्चात्य प्रभाव पर रवीन्द्रनाथ

यह शायद समझा जाय कि मैं पाश्चात्य प्रभाव को बहुत बड़ा स्थान दे रहा हूँ, इसलिये बँगला कविता पर पाश्चात्य प्रभाव का कितना बड़ा भाग है यह रवीन्द्रनाथ के शब्दो मे पाठकों के सन्मुख रक्खा जाता है। कवीन्द्र लिखते है "आधुनिक बँगला कविता की उत्पत्ति यूरोपीय साहित्य की अनुप्रेरणा से हुई इसमें सन्देह नही। इस पर यह आपत्ति की जाती है कि फिर यह सब चीजें राष्ट्रीय नही है। इसका अर्थ यदि यह है कि यह सब कवि-

तायें बंगालियो के रुचिविरुद्ध है, तब तो ये काव्य बंगाल की सरज़मीन पर उत्पन्न ही नही होते, और यदि अंकुर उठता भी तो दो-चार दिन मे जड़ समेत सूख जाता। कहना न होगा कि ऐसा होने का कोई भी लक्षण नही मालूम पड़ रहा है। इस दृष्टि से देखा जाय तो आलू मौलिक रूप से राष्ट्रीय नही है, किन्तु अब वह राष्ट्रीय भोजन तालिका मे ही सब तरह की देशी उस तरीके की चीज़ो को पार कर गया है। राष्ट्रीय कुलशील की दुहाई देकर हम उस युग की "पांचली"+ नामक कविता पद्धति की जितनी भी प्रशसा करना चाहें करें कोई भी स्वदेशवत्सल सब छोड़कर "पांचाली" को राष्ट्रीय विद्यालय में चलाने की सिफारिस नहीं करेगा। नदी अपने लिये आप ही रास्ता काट लेती है, उसे नहर की तरह रास्ता काटकर कृत्रिम रूप से जिलाने की आवश्यकता नही होती। आधुनिक कविता ने इसी प्रकार अपने ही वेग के द्वारा देश के लोगो के चित्त में स्थान कर लिया है, और वह दिन बदिन गहरा और चौड़ा होता जा रहा है।"

वंकिमचन्द्र

इसी बात को और स्पष्ट करते हुए कवीन्द्र ने लिखा "वंकिमचन्द्र ने दुर्गेशनन्दिनी, कपालकुंडला तथा विषवृक्ष को लेकर बॅगला साहित्य को अर्पण किया। कहना न होगा इनका रंग-ढंग तथा शैली अंग्रेजी साहित्य के अनुरूप थी। पंडितों ने इनकी भाषारीति की खिल्ली उड़ाई है, उधर समाजधुरन्धरो ने इनकी यह कहकर निन्दा की है कि सामाजिक सनातन रीति से हटाकरयह कहानियाँ देश के मन को अशुद्ध कर देती हैं, किन्तु देखा गया कि कट्टर से कट्टर निष्ठावालो सासों ने पतोहुओ से अनुरोध करना शुरू किया कि वे वंकिम की पुस्तको को उन्हे पढ़कर सुनावे, वटतल्ला मे छपे हुए पुराणों से रस्सी से बॅधा हुआ उनका चश्मा दूर हट गया था। यह विदेशी चीजें हमे अच्छी नहीं लगनी चाहिये कहकर किसी ने इनके प्रति लोगों की अश्रद्धा उत्पन्न नही कर पाई।"

+पाचाली को हम बँगला आल्हा कह सकते हैं।

पाश्चात्य प्रभाव, किन्तु......

कवीन्द्र के प्रति कोई असम्मान न करते हुए मेरा यह विचार है कि आधुनिक बँगला साहित्य पर पाश्चात्य प्रभाव को श्री मोहितलाल मजुमदारने इससे कहीं अच्छी तरह समझाया है। मोहितलाल स्वयं एक प्रतिष्ठित बँगला कवि हैं। "उन्होंने लिखा है लेकिन इस बात को भूलने से नहीं चलेगा कि यह साहित्यरस चाहे कितना भी उत्कृष्ट हो, यदि उसकी भाषा ने हमारे हृदय को स्पर्श न किया हो, यदि उसके भाव तथा कल्पनाओं ने हमारी रसपिपासा का उद्रेक भर न कर हमारे साथ मार्मिक सम्बन्ध की सृष्टि न कर पाई हो तो वह हमारा साहित्य नहीं हुआ। विदेशी भाव तथा कल्पनाओं को हम विदेशी साहित्य में भी उपभोग करते हैं, किन्तु उनसे हमारा मार्मिक सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाता, तभी तो विदेशी सुसाहित्य का अनुवाद ही स्वदेशी साहित्य की मर्यादा प्राप्त नही कर पाता, हमें पृथक राष्ट्रीय साहित्य की ज़रूरत पड़ती है। इस प्रारंभिक युग मे जिन लोगो ने विदेशी भावो, कल्पनाओ तथा शैली को अपने मे जब्ब कर लिया, अर्थात् उनसे अनुप्रेरणा लेकर अपने लिये एक स्वतन्त्र कल्पनाकर उसमें अपनी स्वतन्त्र प्रतिभा की जान फूँक पाई, वे ही इस युग के साहित्यकार हैं। सृजन करने की इसी शक्ति को हम दिव्यशक्ति कहते है।"

साहित्य और जाति की प्रतिभा

"यही पर साहित्य के साथ राष्ट्रीयता का सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है। कवि की आत्मा केवल एक निर्विशेष मानवात्मा नही है। रूप की जो पिपासा कवि प्रकृति की स्थायी सम्पत्ति है, जिसके वशवर्ती होकर कवि के भाव कलामय हो जाते हैं, और निर्विशेष विशेष मे परिणत हो जाता है, कवि का वह कविधर्म एक विशिष्ट प्राण का द्योतक है। प्राण का यह विशिष्ट स्वरूप है, तभी वे भाव कलामय रूप मे प्रकाशित हो सके। इस विशिष्ट प्राणधर्म के बग़ैर

साहित्य में प्राण का संचार नहीं होता, यदि देखा जाय तो मालूम होगा कि युगों की राष्ट्रीय चेतना, उसका भूत तथा वर्तमान जोकि उसके जाग्रत तथा सुप्त चेतना *Subconsciousness* में प्रसारित है, कवि के वैयक्तिक प्राण की तह में है।"

बँगला के प्राचीन कवि

"बँगला का प्राचीन साहित्य हिन्दी की तरह समृद्ध चाहे न हो, किन्तु उसमे बहुत से ऐसे कवि जैसे काशीरामदास, कृत्तिवास, मुकुन्दराम चक्रवर्ती, गोविन्ददास, भारतचन्द्र राय, रामप्रसाद सेन, उद्धवदास आदि हुए है जिनके सम्बन्ध मे हम आज चाहे कुछ भी कहे यह मानना ही पड़ेगा कि बँगाली जाति की आत्मा के साथ उनका अन्तरंग सम्बन्ध था, किन्तु जाति+ की आत्मा कोई शाश्वत वस्तु नही, वह भी बदलती रहती है। बाहरी प्रभाव जिनमे आर्थिक कारण है, आवागमन की सुविधा या अभाव, विदेशी साहित्य ही के कारण जिस चीज़ को हमने राष्ट्र की आत्मा कहा है वह बदलती या विकसित होती है। इसीको दूसरे शब्दों में *Zeit-geist* याने युगमन कहते है, यद्यपि युगमन राष्ट्रीय आत्मा से कहीं व्यापक शब्द है। बँगला का पदावली साहित्य चाहे कितना भी सुन्दर रहा हो, और सुन्दर वह है इसमे सन्देह नहीं, किन्तु जब पाश्चात्य के साथ प्राच्य का निकट सम्बन्ध हो गया उसकी समाज व्यवस्था, आर्थिक संगठन तथा साहित्य हमारे ऊपर प्रभाव डालने लगा तो पदावली साहित्य की विचारधारा तथा शैली हमारे लिये एक दूर की चीज़ हो गई।"

"वैष्णव कवियों ने जिस तरीक़े से तथा जिस दृष्टि से जगत को, जीवन को तथा मनुष्य को देखा था, नये युग के इन कवियों के लिये उन्हे उसी दृष्टि से देखना असंभव था। वैष्णव कविता चाहे जितनी महान तथा सुन्दर रही हो, वही

+बंगाली शब्द के साथ जाति शब्द का प्रयोग *nation* अर्थ मे नहीं किया गया —लेखक

कविता का एकमात्र आदर्श है, या उसीको बंगाल के कवि हमेशा अपनाकर पड़े रहेंगे यह एक व्यर्थ की आकांक्षा है। भावुकता का स्रोत हमेशा नई धारा मे नये दृश्यों के बीच प्रवाहित होता है, उसे बाँधकर कौन रख सकता है, भला भागीरथी को फिर गंगोत्री मे कौन ले जा सकता है? बँगाल के साहित्य मे यह पट परिवर्तन, तथा वातावरण के बदल जाने को हम केवल मोह कहकर टाल दें यह नही हो सकता। नये युग का बँगला साहित्य केवल अंग्रेजी साहित्य की क्षीण प्रतिध्वनि था, यह कहना ग़लत होगा। मान लिया जाय कि अंग्रेज भारतवर्ष मे नही आते तो भी यह नही कहा जा सकता कि बँगला में घुमाफिराकर विद्यापति और चंडीदास की ही सृष्टि होती। यदि यह मान लिया जाय कि बँगला के इन कवियों में प्रतिभा थी तो मानना ही पड़ेगा कि ये कलाकार युगमन के तक़ाजे के अनुसार साहित्य को नये तरीके से तोड़कर सृजन करते"।

साहित्यिक शुद्धता

"जगत मे कोई भी जाति ऐसी नही है जो सम्पूर्ण रूप से अपने साहित्यिक रक्त की शुद्धता को क़ायम रख सकी हो। शायद ऐसी कोई जाति हो भी नही सकती। वर्णशंकरत्व से ही जातियों की उत्पत्ति हुई है। दुनियाँ का कोई भी साहित्य स्वयंसिद्ध नही है, विशेषकर जबकि आवागमन सुविधाजनक हो गया, तब तो इच्छा करने पर भी कोई जाति कछुए की तरह अपने साहित्य को अपने अन्दर बन्द नहीं कर सकती थी।"

अंग्रेज़ी साहित्य के तीन महायुग

" अंग्रेज़ी साहित्य की बात ली जाय। अंग्रेज़ी साहित्य को तीन महायुगों मे विभक्त करने पर देखा जायगा कि तीनो महायुग के मूल मे विदेशी प्रभाव है। पहिले युग के अंग्रेज़ी साहित्य के उत्स-स्थल चासर ने अपनी कविता की प्रेरणा फ्रान्स और इटली से ली थी। इसके बाद एलिज़ाबेथीय युग का आरंभ जिन लोगों से

हुआ था वह वाट (*Watt*) तथा सरे (*Surrey*) अपना बीज इतली से ले आये थे। वर्डसवर्थ ने पहिले फ्रान्स से प्रेरणा ली फिर कोलॅरिज के साथ जर्मनी घूमकर लौटने के बाद जर्मनी से कविता की प्रेरणा ली। आधुनिक रासेटी ने इतली और फ्रान्स से, मोरिस ने स्कन्डिनेविया के सागा साहित्य से, तथा स्विनबर्न ने सभी जगह से प्रेरणा ली। इसी प्रकार यदि फ्रेन्च साहित्य ने स्पेन, जर्मनी तथा अंग्रेज़ी साहित्य से अनुप्रेरणा न ली होती तो वह भी अपने *Troubere* और *Troubadour* तक ही समाप्त हो जाता। सारा लैटिन साहित्य तो ग्रीक साहित्य की छाया में ही उपजा है, फिर भी लैटिन साहित्य मे अपनी विशेषता है इसे कौन अस्वीकार कर सकता है? ग्रीक साहित्य की इस बाढ़ के विरुद्ध केटो कितना लड़े, किन्तु उन्होने अन्त तक स्वयं ही युगमन के प्रभाव मे आकर अस्सी साल की उम्र मे ग्रीक सीखना शुरू किया।"+

पाश्चात्य प्रभाव की महत्ता

बॅगला साहित्य के समालोचकों ने पाश्चात्य के इस प्रभाव को घटाकर दिखाने की चेष्टा नही की। स्वयं रवीन्द्रनाथ ने भी देखा गया ऐसा नहीं किया। श्री नलिनीकान्त गुप्त ने आधुनिक बॅगला साहित्य पर लिखते हुए स्पष्ट ही लिखा है " आधुनिक बॅगला साहित्य के जीवन मे हम तीन सन्धिस्थल देखते है, और तीन अवसरों पर तीन महापुरुषो का आविर्भाव हुआ है। इन तीनो विभूतियो ने नवजीवन की जो धारा बहाई है उसका उत्स उन्होने पाश्चात्य या और भी साफ़-साफ़ कहा जाय तो इङ्गलैंड से पाया है। पहिले राममोहन, दूसरे मधुसूदन, तीसरे रवीन्द्रनाथ। आधुनिक बॅगला साहित्य मे ये तीनो एक-एक युग के प्रवर्तक है, विदेशी शैली तथा साहित्य में निस्नात होकर इन तीनो ने बॅगला को घर की चहारदीवारी से निकालकर विश्वसभा में प्रतिष्ठित किया। चासर

+नलिनीकान्त गुप्त—प्रवासी ज्येष्ठ १३२५)

के बाद डेढ़ सौ वर्ष तक अङ्गरेज़ी साहित्य मे जैसे एक अंधकार का युग गया है उसी तरह चंडीदास तथा वैष्णव कवियों के बाद बॅंगला साहित्य कई सौ वर्ष अंधकार मे पड़ा था। इस दौरान मे कवियो का एकदम अभाव था यह बात नहीं, पद्य प्रचुरता से लिखा गया, किन्तु कवित्व वह धधकती, सुलगती, जलती हुई प्रतिभा की मशाल हम किसी के हाथ में नहीं देखते। जो कुछ था उसे हम मुमूर्षु के किसी प्रकार दो घड़ी तक जीते रहने का प्रयास मात्र कह सकते हैं। इस जीवनरूपी नदी का मुँह पाश्चात्य भावों से ओतप्रोत राममोहन ने खोल दिया। मधुसूदन ने वज्रकी तरह प्रतिभा के प्रहार से उसके दोनों किनारो को तोड़कर उसका मुँह चौड़ा कर दिया। रवीन्द्रनाथ ने तो खैर इस धारा को एकाकारकर उसमे एक महाप्लावन को ही ला दिया।"

बँगला की उन्नति का कारण

नलिनी बाबू ने लिखा है और मैं भी इसे मानता हूँ कि भारतवर्ष की भाषाओ मे बॅंगला भाषा जो इस साहित्यिक उच्चता को पहुँची उसका कारण है कि जब पहिले-पहल अंग्रेज़ी प्रभाव यहाँ आया तो बंगाल ने बड़े तपाक से उसे अपनाया। "विदेशी भावुकता के पहिले प्लावन में बगाल यदि इस प्रकार अपने को छोड़ न देता, यदि वह जाति नष्ट होने के भय से पीछे हट जाता, तो वह महाजीवन के स्रोत से दूर पड़ा रहता। संभव है हम पदावली साहित्य का चर्वित चर्वण करते रहते, किन्तु हमे न "मेघनादवध" न 'कपालकुंडला' न 'विषवृक्ष' न 'सोनार तरी' का दर्शन होता।" फिर बॅंगला को विश्वसाहित्य मे तो कभी भी स्थान न मिलता।

नया साहित्य

"पाश्चात्य के प्रभाव में आने के बाद बॅंगला साहित्य का जो निर्माण होने लगा, वह पहिले के बॅंगला साहित्य से दूसरी तरह का था इसमें सन्देह नही। चंडीदास से दाशरथी राय तक बंगला

साहित्य का विस्तार जितना था, इसका क्षेत्र उससे कही बढ़कर था। इस नये साहित्य मे जो विचार तथा भाव आये, वे दाशरथी राय ऐसे कवियो की कल्पना के बाहर की बातें थी। इस नये साहित्य के रंगढंग, गति यहाँ तक कि प्राण मे भी विभिन्नता थी। यह बारबार कहा जाता है कि इस नये युग के प्रारंभ मे बंगालियो के सन्मुख जब पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान की प्रकांड थाली परोसी गई तो भूखा बंगाली उस पर टूट पड़ा। उसने खाया तो खूब, किन्तु हज़म नही हुआ। इसके फलस्वरूप जो हमे नये युग के साहित्य के नाम से हमारे सामने आया, वह उनके हृदय का रक्त नही था, बल्कि खाये हुए अजीर्ण द्रव्यो का उदगार मात्र था। इसमे सन्देह नहीं कि ऐसे उद्गार भी साहित्य के दरबार मे आये।"+

पाश्चात्य प्रभाव से पथभ्रष्ट

सच बात तो यह है पाश्चात्य प्रभाव जब इस तरह एक प्रबल आँधी की तरह बँगला के कवि साहित्यिकों के सूक्ष्म जगत मे आया, तो उनमे से बहुतो के पैर उखड़ गये, कई लड़खड़ा कर रह गये। उनका यह लड़खड़ाना छूटा नहीं। बड़े बड़ों का यही हाल रहा। फलस्वरूप बँगला काव्य मे जब यह पाश्चात्य प्रभाव की बाढ़ का युग था, उसी समय एक दूसरा आन्दोलन भी वहाँ चल निकला वह यह कि इससे मुक्त हो जाओ। इस युग के बँगला के कवियो मे हम इन्हीं शक्तियो का धन और ऋण देखते हैं। "कवि हेमचन्द्र मे हम एक विशुद्ध बंगाली का हृदय पाते हैं, किन्तु वह प्राण बलिष्ठ होने पर भी अलस है, वह जोरो से इस आँधी से आन्दोलित ही नहीं हुआ। जिस वाज्राग्निकी दप्तरोशनी से माइकेल मधुसूदन की सजग चेतना स्तंभित हो गई थी, किन्तु फिर भी उस रोशनी में उसने बँगला की काव्यलक्ष्मी को प्रत्यक्ष किया, वही वज्राग्नि हेमचन्द्र का स्थूल आत्मतृप्त बंगालीपन को भेद नहीं कर पाया। कवि नवीनचन्द्र मे आवेग था, किन्तु

+ डा० नरेशचन्द सेन गुप्त

वह आवेग अन्ध था, वे बिलकुल आत्मसचेतन नही थे, आत्माभि-मानी थे। उनके मन मे विचार तथा कल्पनाओ का अवाध अधिकार था, फिर भी वह ऊपर ही ऊपर बह जाते थे, अंतरंग में पैठकर वह काव्यसृष्टि की गहरी प्रेरणा नही हो पाती। एक एक *idea* जैसे उन पर दखल जमा लेता था, अङ्गरेजी विद्या का गर्व इसके मूल मे था। इस अङ्गरेजी शिक्षा बल्कि उसके गर्व के साथ अत्यन्त देशी अतिभावुकता मिलकर जिन काव्यों की सृष्टि हुई है उन्हे देखकर हृदय में एक अजीब गुदगुदी पैदा होती है।" +अवश्य ये ही बातें सुरेन्द्रनाथ मजुमदार मे जाकर एक कलामय समन्वय में पहुँचती है। अठारहवीं सदी के अंग्रेजी साहित्य मे जो विचारशीलता तथा युक्ति की प्रधानता थी उसके साथ बंगाली भावुकता के समन्वय की चेष्टा उन्होने की। उनकी यह चेष्टा पूर्ण रूप से सफलता मंडित न हो सकी, इस असाध्य साधन के लिये एक महान प्रतिभा की ज़रूरत थी, फिर भी वे एक मध्य मार्ग अवलम्बन करने मे सफल हुए। उनकी रचनाओं मे कवित्य और बुद्धि का एक सुन्दर तारतम्य हम पाते हैं। न हेमचन्द्र की तरह महाकाव्य-लेखन के प्रयास मे ही उन्होने अपनी सारी शक्ति व्यय न कर डाली न नवीनचन्द्र की तरह महाकाव्य रचना के नाम पर धर्म तथा राजनैतिक वक्तृओ को उन्होंने अतुकान्त कविता में लिपिवद्ध किया।

आधुनिक वङ्गला का उद्‌भव काल

नवीन बॅगला साहित्य के यथार्थ उद्‌भव काल हम १८५०-१८८० ले सकत है। राजनीति मे यही काल प्रबल आलोड़न विलोड़न का समय है। १८५७ का ग़दर कोई पूर्वापरसम्बन्धहीन घटना नही है, उसका मूल १८५७ से पहिले के काल मे प्रसारित है। ग़दर के इधर तथा उधर जो आर्थिक-सामाजिक परिवर्तन हुए, जो विचारो, स्वार्थों, आदर्शों तथा पद्धतियो का संघर्ष हुआ उसके फलस्वरूप साहित्य

+श्री मोहितलाल मजुमदार।

मे एक नये युग का प्रवर्तन कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। माईकेल मधुसूदन का मेघनाद-वध, बिहारीलाल का सारदामंगल, नवीनचन्द्र का पलाशीर युद्ध, हेमचन्द्र की कवितावली इसी युग मे लिखी गई थीं। ईश्वर गुप्त ने जिस संघर्ष बल्कि आक्रमण की एक झलक ही देखकर अपना किवाड़ बन्द कर लिया था, वह उनकी मृत्यु के बाद ही बङ्गला साहित्य को पल्लवित पुष्पित करने मे समर्थ हुई। पहिले ही कहा जा चुका बहुत से साहित्यिक इस नई रोशनी मे वर्णांध हो गये, उनके पैर लड़खड़ा गये, यह स्वाभाविक था। समय ने ऐसे कवियों तथा उनकी कविताओ को ग्रस लिया है। इसमे कोई दुःख की बात नही है, यह भी स्वाभाविक है।

सिलसिला न रहा

अङ्गरेज़ी सभ्यता, साहित्य के संस्पर्श के पहिले हम कवि भारतचन्द्र मे जो कलात्मक शैली, निखरी हुई भाषा तथा सौष्ठव का दर्शन पाते है, वह क़ायम नही रह सका। इसका कारण राजनैतिक अव्यवस्थितता तथा सामाजिक कूपमंडुकता थी। बात यह है वह संस्कृति ही लुप्त हो चुकी। यदि भारतचन्द्र के बाद साहित्य और भाषा की प्रगति का सिलसिला क़ायम रहता तो उन्नीसवी सदी के उत्तरार्ध में हमें ईश्वर गुप्त तथा "कविवालों" की रचना से अच्छी चीज़ मिलती, इस प्रकार बाद को बिहारीलाल, माईकेल आदि प्रतिभाओ का बहुत कुछ आभास भाषा तथा शैली को अपने उपयोगी करने मे व्ययित करना पड़ा।

माइकेल और बिहारीलाल

बॅगला के आधुनिक साहित्य के इस प्रारंभिक युग मे दो कवि बहुत ज़बर्दस्त हुए है। एक माइकेल मधुसूदन दत्त, दूसरे बिहारीलाल। हम इन पर ज़रा तफसील के साथ आलोचना करेंगे। स्मरण रहे कि बन्देमातरम मंत्र के ऋषि बङ्किमचन्द्र भी इसी युग की

विभूतियो मे है, किन्तु चूँकि वे कवि नही थे अर्थात् कवि से बढ़कर कही बड़े औपन्यासिक तथा गद्यलेखक थे, इसलिये उनकी प्रतिभा का विश्लेषण हमारे इस ग्रन्थ के दायरे में नही आता। फिर भी अपने समसामयिक तथा बाद के काव्य साहित्य पर उनका गहरा असर पड़ा है, इस दृष्टि से उन पर कुछ कहकर तभी हम माइकेल तथा बिहारीलाल पर अपना वक्तव्य कहेगे।

वंकिम एक साहित्यिक क्रान्तकारी

वंकिमचन्द्र आज हमारे सामने क्रान्तिकारी तो क्या शायद एक प्रतिक्रियावादी जँचे, किन्तु उस ज़माने मे जब वे थे एक भयंकर क्रान्तिकारी के रूप मे ही दृष्टिगोचर हुए होगे,इसमे सन्देह नही। जाति की विचार-शक्ति लुप्त हो चुकी थी, विश्वास ने कुसंस्कार का बाज़ू कसकर थाम लिया था। किसी भी ज़िन्दा सिद्धान्त के साथ जाति का संस्पर्श नही था। ऐसे समय में विपुल ऐश्वर्यशाली पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान का यहॉ प्रवेश हुआ। वङ्किम ने इसको श्रद्धा के साथ विचार किया। वङ्किम के अपने शब्दो मे ही लीजिये, वे श्रीमद्भगवद्गीता की भूमिका मे लिखते है "फिर भी मुझे यह कहना ही पड़ता है कि जिसने पाश्चात्य साहित्य, विज्ञान और दर्शन के साथ परिचय प्राप्त कर लिया, वह हर क्षेत्र मे प्राचीनो का साथ दे सकेगा। यह संभव नही जो लोग समझते है पाश्चात्य पंडितो ने जो कुछ कहा है वह सभी ग़लत है, और हमारे प्राचीनों ने जो कुछ कहा है वह सब ठीक है, मुझे उनसे कोई सहानुभूति नही।"

इससे भी स्पष्ट लीजिये, वङ्किम लिखते है—

"तीन-चार हज़ार वर्ष पहिले भारतवर्ष के लिये जो विधियॉ संस्थापित हुई थी, आज हरफ़ बहरफ़ उनसे मिलकर कोई नही चल सकता। वे ही ऋषिगण यदि आज भारतवर्ष मे मौजूद होते तो वे ही कह उठते—'नही, यह नही चल सकता। यदि उन विधियो

का उसी प्रकार पालन किया जाय तो हमारे प्रचारित धर्म का उसके द्वारा मार्मिक विरोध ही होगा।' धर्म का वह मर्मभाग अमर है, चिरन्तन है, हमेशा उससे मानव जाति का कल्याण ही होगा, क्योंकि मनुष्य-प्रकृति मे ही उनकी नींव है। विशेष विधियाँ समयानुसार ही सब धर्म में होती है। उसको समय के अनुसार त्याग कर देना चाहिये या बदलना चाहिये।"

वंकिम-साहित्य

वंकिमचन्द्र की महत्ता केवल इस बात में नहीं है कि वे एक ज़बर्दस्त सुधारक थे, राममोहन ने इसके पहिले इस गुण से भारत को और बंगाल को एक रास्ता दिखलाया था, किन्तु वंकिम की महत्ता इस बात मे थी कि वे एक स्रष्टा थे, और उनकी सृष्टि कला को वाहन बनाकर चलती थी। वंकिम-साहित्य बहुत कुछ हद तक मध्यवित्त श्रेणी का साहित्य है, उसके अन्दर देश के आम लोगों का चित्र उनके सुखदु.ख की धड़कन हमे नहीं सुनने को मिलती, फिर भी हम यदि कान डालकर सुनें तो जो बहुत-सी समस्यायें उस युग के भारतीय समाज को आलोड़ित कर रही थी तथा जो आदर्शों का संघर्ष ज़ोरों के साथ चल रहा था उनको सुन सकते हैं।

वंकिमचन्द्र भाववादी थे, वास्तववाद से उनका सम्बन्ध था, किन्तु उतना ही जिससे उनके आदर्श को पैर जमाने का मौक़ा मिले, और वह हवा मे उड़ता हुआ न मालूम पड़े। हम जिसे आज-कल साहित्यिक वास्तविकता कहते हैं वह वंकिमचन्द्र के लिये बिलकुल अज्ञात बात थी ऐसा कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। आज-कल के विभाजन के अनुसार वंकिम को हम रोमांचवादी *Romantic* कह सकते हैं, वंकिम की तुलना अंग्रेज लेखक स्काट से की जाती है, यह ठीक ही है।

समालोचक मोहितलाल के अनुसार "वंकिम के प्रथम उपन्यास 'दुर्गेशनन्दिनी' में साहित्यिक प्रेरणा के अतिरिक्त कुछ नहीं था।

'दुर्गेशनन्दिनी, बंगला भाषा का पहिला रोमान्स था, बिलकुल अंग्रेज़ी रोमान्स के ढंग पर लिखा हुआ। 'मृणालिनी', 'युगलाङ्गुरीय' तथा 'राधाराणी' इसी आदर्शानुसर लिखे गये थे। हाँ 'मृणालिनी' के कथानक में देशप्रेम सबसे पहिले दिखाई पड़ा। वंकिमचन्द्र के लिखे हुए उपन्यासो मे 'विषवृक्ष' का नम्बर चौथा है, इसमे समाज की समस्याये सामने आती है; 'चन्द्रशेखर' और 'कृष्णकान्तेर विल' एक ही प्रेरणा का नतीजा है। 'आनन्द मठ' और 'राजसिंह' मे देश-प्रेम, 'देवी चौधुरानी' और 'सीताराम' मे धर्म समस्या, 'रजनी' में मनस्तत्व और 'इन्दिरा' मे केवल गल्प रचना का आनन्द है। विशुद्ध उपन्यास, अर्थात् जिनमे समाजनैतिक या धर्मनैतिक कोई अभिप्राय नही है उनकी संख्या बहुत ही कम है, और उनमे 'कपालकुंडला ही सबसे बढ़कर काव्य बना। जिन उपन्यासो मे स्वदेश, समाज, धर्म या नीति की प्रेरणा है उन्ही मे वंकिमचन्द्र की कल्पना सबसे अधिक स्फूर्ति प्राप्त कर सकी, चरित्र की महिमा घटनासन्निवेश की दक्षता के कारण उनमे नाटकीय सौन्दर्य आ गया है। समस्याओ की गुत्थियाँ बड़ी पेचीली होने पर भी मालूम होता है वंकिम की प्रतिभा ने चट्टान की रगड़ से इस्पात की तरह चिंगारियाँ बरसाई है। वंकिम फिर भी अपने उपन्यासो से बड़े थे। उनके ग्रन्थो को पढ़ते-पढ़ते बारबार यह उद्‌गार निकल पड़ता है— *Ecce Homo* "यही आदमी है ?"

वंकिम साहित्य में राष्ट्रीयता

पहिले ही कहा जा चुका है वंकिम समाज की एक विशेष श्रेणी के ही इर्द-गिर्द घूमते रहे, किन्तु उनके उपन्यासो ने एक बात में बड़ी मदद दी, वह है राष्ट्रीयता का निर्माण। वंकिम ने तर्कों पर इस राष्ट्रीयता नामक चीज़ को तर्कों से भारतवासियो के मन मे प्रतिष्ठित करने की चेष्टा नही की, उन्होने उसके अस्तित्व को एक भारतवासी के जीवन मे वैसे ही स्वतःसिद्ध मान लिया जैसे एक

अङ्गरेज मे माना जाने का रिवाज है या था फिर 'आनन्दमठ' 'राजसिह' आदि लिखना शुरू किया। भारतवर्ष मे अखिल भारतीय राष्ट्रीयता-बोध एक बहुत बड़ी बात है, इसके निर्माण मे वंकिम का एक बड़ा भाग है।

माइकेल की कविता

वंकिम की इस थोड़ी-सी जरूरी आलोचना के बाद अब हम माइकेल मधुसूदन की कविता की आलोचना करेंगे। माइकेल की जीवनी संक्षेप मे यह है कि वे पाश्चात्य की क़रीब-क़रीब सभी प्रधान भाषा जानते थे, पाश्चात्य मे उन्होंने ख़ूब भ्रमण भी किया था। पहिले उन्होंने अङ्गरेज़ी मे कविता लिखी, किन्तु बाद को सुझाने पर बंगला मे लिखने लगे। एक स्त्री के प्रेम मे पड़कर वे इसाई हो गये थे। कहना न होगा कि ऐसे व्यक्ति मे पाश्चात्य कितनी प्रबलता के साथ होगा, किन्तु वह चाहे कितना भी प्रबल हो कवित्व उनमे प्रबलतर था, तभी वे न तो गुमराह हुए, न उन्होंने हवा के सामने घुटना टेक दिया, न उनका काव्य कहीं अजीर्णरोगी का उद्‌गार ज्ञात होता है। 'माइकेल की काव्यप्रेरणा मे सबसे प्रबल जो है वह है बाहरी वस्तु का बाहरी रूप। केवल विचित्र वस्तुओ का संग्रहकर उनको दूर मे स्थापनकर या पास मे सजाकर उनके दर्शन या स्पर्शन के ही आनन्द मे ही वे विभोर है। छोटी या बड़ी तस्वीर बात की बात मे बातों से आँखो के सामने खड़ी कर देने मे, या कारीगर की तरह मूर्ति की सुषमा खोज निकालने मे उन्हे कितना आनन्द है, उनकी कल्पना मानो उल्लास की बिह्वलता मे थिरकने लगती है। उपमा के बाद उपमा का जाल बिछाकर वे जिस रूप को प्रकाश करते है वह विचारों की झलक नहीं, बाहरी वस्तुओ के विन्यास का सौन्दर्य है। विषाद की प्रतिमा स्वरूपा बन्दिनी सीता के माथे पर सेंदुर को वे गोधूलि के ललाट मे नक्षत्र रत्न की भाँति देखते हैं। वे वस्तु को भाव के द्वारा या भाव को वस्तु के द्वारा स्पष्ट करने के आदी नहीं, वे तो

एक वस्तु को स्पष्ट करने के लिये बहुत-सी वस्तुओं को लाकर आँख के सामने ढेर कर देते हैं, वे चित्र को चित्र से ही स्पष्ट करते है। आलोक और छाया इन दो ही वर्णों मे संगमर्मर की मूर्ति जैसे अपने को प्रकाशित करती है, उसी प्रकार उनकी बनाई हुई मूर्तियाँ अत्यन्त सरल और आम सुख-दुःख की छाया और आलोक से हमारे सामने स्पष्ट हो जाती है। इसलिये देखने मे मिल्टन को अनुसरण करते हुए मालूम होने पर भी मधुसूदन मनुष्य की दुनिया को पीछे और नीचे छोड़कर महाकाव्य के अत्युच्च कल्पलोक में सीमाहीन दिग्देश मे अपनी कल्पना को भेज नही पाये। मनुष्य को ही उन्होंने बड़ा करके देखा था। पुरुप का पौरुष तथा नारी के नारीत्व ने उनके मन की जीभ मे जो रस का संचार किया था, उसी की व्याकुलता मे ये काव्य लिखे गये है। माइकेल को पढ़ने से यह मालूम होता है जैसे इस गायनप्राण बँगला कवि ने एक नये जगत का आविष्कार किया हो, वहाँ हृदय-समुद्र की बलखाई हुई लहरों की अलस फेनरेखा बुलबुलो की माला मे विलुप्त हो जाती है, किन्तु उसी के साथ दूर से आया हुआ जल का कलकल और भग्ननौका-यात्री का आर्तनाद एकान्त निकुंज के वंशीरव को एक अपूर्व वेदना से प्रतिध्वनित कर देता है। कविकल्पना के इस नये अभियान ने नये साहित्य की गति को एक निर्देश दिया था, फलस्वरूप मन के सूक्ष्म लीलाविलासों से बेखबर होकर मनुष्य को देह के राज्य मे खड़ा करवाकर उसके स्वाभाविक आकार, प्रकार तथा रूप को देखने की आकांक्षा। जगी पाप-पुण्य से परे उसके प्राणो की उमंगे नियति के अमोघ नियम से कैसी भीपण-मधुर हो उठती है, इस बँगला कवि के चित्त में उसी की प्रेरणा जगी थी।'+

माइकेल पर कवीन्द्र

कवीन्द्र ने माइकेल के सम्बन्ध में लिखा है "आधुनिक बँगला

+देखो आधुनिक बाँगला साहित्य, पृ : १६

के कविता-साहित्य में माइकेल मधुसूदन ने जो इसके प्रथम द्वार-मोचक थे सबसे बढ़कर दुःसाहस दिखलाया। उन्होने जिस मिलटनी बाढ़ से दुरूह शब्दतरंग उठाकर बंगला भाषा को तरंगित कर दिया, उससे बढ़कर अपरिचित और अनभ्यस्त बंगाली पाठकों के लिये कुछ भी नही था। यह बिलकुल अपरिचित और अनभ्यस्त होते हुए भी इतना अपरिचित नही था कि बंगाली पाठक इसे समझ ही न सके। बंगाली शिक्षित समाज अङ्गरेज़ी साहित्य के ज़रिये से इस विस्तृततर जगत से परिचित हो चुका था उस समय के शिक्षित बंगाली मिलटन, शेक्सपियर की आज से ज़्यादा चर्चा करते थे। इसलिये ज्यो ही बॅगला भाषा के वाद्ययन्त्र के ज़रिये से वही परिचित ताल, लययुक्त जगत उनके सामने आया तो प्रशंसा करने लगे। मधुसूदन की प्रतिभा के कारण बॅगला काव्य के रंगमंच पर पहिले-पहल प्राच्य पाश्चात्य गले मिले।"

माइकेल का मूल्य

बॅगला साहित्य मे पाश्चात्य का प्रभाव इस प्रकार द्रुतता के साथ रंग लाने लगा और अब भी ला रहा है, उसका श्रेय बहुत अंश मे पद्यसाहित्य मे मधुसूदन को है। रवीन्द्रनाथ ने जो कहा है कि वे बॅगला पद्यसाहित्य के द्वारमोचनकारी कहाॅ है वह ठीक ही है। प्राक-पाश्चात्य बॅगला तथा भारतीय साहित्य मे कुछ विशेष विषय थे जैसे राम और कृष्ण की कथा, वैष्णवी भक्ति का विभिन्न रूप, बहुत हुआ दो-चार राजे-महाराजे की गाथा गा दी गई। तुलसीदास, सूरदास, चंडीदास विद्यापति,चन्द्रबरदाई, भारतचन्द्र, तुकाराम इन्ही को लेकर गाते रहे। इसकी सब। *permutations* और *combinations* गाये, लिखे जा चुके थे। भारतीय कविता साहित्य इन्ही की चहार-दीवारी में घूम-घूमकर कातर क्रन्दन कर रहा था। इस बास्टिल (*Bastille*) से उद्धार करने के लिये एक विचारगत क्रान्ति की ज़रूरत थी। वह

क्रान्ति पाश्चात्य प्रभाव के कारण संभव हुई। मधुसूदन ही वे क्रान्तिकारी थे, जिन्होने इसका फायदा उठाकर इसको संभव किया। यह बात नही कि माइकेल ने बजाय राम, कृष्ण और पौराणिक गाथाओं को बिलकुल त्याग दिया बल्कि सच बात तो यह है माइकेल ने अपनी श्रेष्ठ रचनाये पौराणिक कहानियों तथा व्यक्तियों के इर्द-गिर्द लिखी, किन्तु उनमे एक नया जीवन, एक क्रान्तिकारी रूप से अभिनव दृष्टिकोण, एक नई व्याख्या तथा नया तरीका (*approach*) ला दिया।

मेघनादवध काव्य

मधुसूदन की रचनाओं मे मेघनादवध सबसे अच्छा है, इसमे हामरे चिर परिचित राम, लक्ष्मण, सीता, रावण, मेघनाद, प्रमीला आती है; किन्तु कोई यदि समझे किये हमारे पुराणों मे वर्णित तथा वैष्णव कोमल कान्त पदावली के व्यक्तित्व है तो बड़ी गलती होगी। नाम तो वे ही हैं, घटनाओ की परम्परा तथा कथानक की समाप्ति (*denouement*) उसी तरह है, किन्तु ये व्यक्ति बिलकुल बदले हुए है। मेघनादवध को पढ़कर ऐसा नही प्रतीत होता कि राम-रावण का युद्ध निरवच्छिन्न रूप से भले-बुरे का युद्ध है बल्कि दो उच्चाकांक्षी राजाओ का युद्ध है या ज्यादा से ज्यादा दो सभ्यताओ के संघर्ष का युद्ध है। माईकेल का मेघनाद लक्ष्मण से कोई बुरा आदमी नही जॅचता, उसका वध कोई दैत्य का विनाश नही बल्कि एक शहीद की शहादत के रूप मे हमारे सामने आता है। पुस्तक पढ़ते-पढ़ते ऐसा मालूम होता है कि यदि हम लड़कपन से राम-लक्ष्मण की जय और मेघनाद की पराजय चाहते न आते तो कदाचित् हमे मेघनाद की जय से ही तृप्ति होती। माईकेल ने मेघनाद को करीब एक दूसरा अभिमन्यु बनाकर छोड़ा है। माईकेल की सीता अच्छी है, किन्तु प्रमीला और अच्छी है। सीता से प्रमीला कुछ कम महिमामयी नही मालूम होती। प्रमीला

चरित्र एक नाम के अतिरिक्त सम्पूर्ण रूप से माइकेल की ही सृष्टि है, पौराणिको को इसकी कल्पना भी नही थी। देशी और विदेशी सभी आदर्श की तिलोत्तमा यह प्रमीला है, मालूम होता है कविवर ने इस चरित्र को बनाने मे अपने वर्णाधार के सब वर्ण खर्च कर डाले है। इस प्रकार परिचित नामो को क़ायम रखकर उनको एक नया चरित्र देकर माईकेल ने अपनी कविता के लिये, अपने पाठको के लिये तथा अपने विचारो के लिये अच्छा ही किया है। इस प्रकार वे जो बाते काव्यामोदियो तक पहुँचाना चाहते थे वह और सुगमता के साथ पहुँच गई। माइकेल ने एक काव्य हेक्टरवध भी लिखा है, किन्तु वह बंगाली पाठको के सामने सफल न हो सका। भारतीय साहित्य के सौभाग्य से माइकेल ने ओडिसि तथा बाईबल से अपने नायक नही चुने, नही तो केवल नामों के ही कारण उनकी सफलता मे सन्देह होता।

वीरांगना काव्य

'वीरांगना' काव्य माइकेल की एक दूसरी अमर रचना है। इसमे वीरांगनाओ के लिखे हुए पत्रों का संग्रह है। द्वारकापति कृष्ण विदर्भाधिपति भीष्मक की कन्या रुक्मिणी का लिखा हुआ एक पत्र इसमे है, जो उन्होने तब लिखा था जब उनके भाई रुक्मी ने चेदीश्वर शिशुपाल के साथ अपनी बहिन के विवाह की बात चलाई। इस पत्र की लिखनेवाली रुक्मिणी है, किन्तु यह पत्र क़रीब-क़रीब वैसा ही है जैसे एक कालेज की लड़की अपने प्रेमिक को लिखेगी जिसके साथ वह भाग जाने में ही समझती है सुखी होगी। *Wooing* के सब वे ही तरीके है, लज्जा भी है साथ-साथ निर्लज्जता भी। वही आग्रह और अपने प्यारे को सातवें आस्मान पर चढ़ाकर अपने को उसकी अयोग्या समझना। उसमें यह नही लिखा गया कि मैं लक्ष्मी हूँ तुम नारायण, यह मूर्ख रुक्मी एक ऐसी बात करने जा रहा है जो असंभव है।

कृष्ण के नाम रुक्मिणी

वह लिखती है—

निशार स्वपने हेरि पुरुष-रतने
कायमन अभागिनी सँपियाछे तारे,
देवे साक्षी करि, वरि देवनरोत्तमे
वरभावे । नारी दासी, नारे उच्चारिते'
नाम तॉर, स्वामी तिनि

"रात मे स्वप्न मे मैने उस नररत्न को देखा, तब से इस अभागिनी ने देवताओ को साक्षी करके इस देव तथा नरो मे उत्तम को वर रूप से वरणकर उन्हें देह तथा मन सौंप दिया । मैं नारी हूँ, दासी हूँ, उनका नाम उच्चारण नही कर सकती, क्योंकि वे पति जो है ।"

एक *feminist* को जो नारी की स्वतंत्रता की खोज मे जान हथेली पर लिये फिरती है, उसको शायद इसकी अन्तिम पंक्तियो मे दासी शब्द खटके, किन्तु यदि क्षमा किया जाय तो मै कहने का साहस करूँगा कि यह स्वाभाविक है । हॉ, आजकल के प्रेम-पत्रों मे यदि उधर से अपने को दासी लिखा जाता है तो इधर से दास भी लिखा जाता है । अस्तु

रुक्मिणी आगे लिखती है—

शुनो एबे दु ख-कथा । हृदय-मन्दिरे
स्थापि' से सुश्याम-मूर्ति, सन्यासिनी यथा
पूजे नित्य इष्टदेवे गहन विपिने,
पूजिताम आमि नाथे । एबे भाग्य-दोषे
चेदीश्वर नरपाल शिशुपाल नामे,
(शुनि जनरव) नाकि आसिछेन हेथा
वरवेशे वरिवारे, हाय अभागीरे

"अब ज़रा मेरी दुःख-कहानी सुनिये। हृदय मन्दिर मे उस श्याम मूर्ति को रखकर मै उसकी उसी तरह पूजा करती थी जैसे कोई सन्यासिनी अपने इष्टदेव को गहन विपिन मे पूजती है। अब दुर्भाग्य के कारण सुनती हूँ ऐसी अफ़वाह है कि चेदीश्वर शिशुपाल नामी कोई राजा मुझ अभागी के वररूप मे आ रहे है।"

कालरूपे शिशुपाल आसिछे सत्वरे—
आइसो ताहार अग्रे। प्रवेशि' ए देशे
हरो मोरे—हरे लये देह तौर पदे
हरिला ए मन जिनि निशार स्वपने।

"सुनती हूँ शिशुपाल काल की तरह जल्दी आ रहा है, आप उससे भी पहिले आये, और इस देश मे प्रवेशकर मुझे हर ले जायँ, और उन्हीको मुझे सौप दे जिन्होने रात्रि के स्वप्न मे मेरा मन हरण कर लिया।"

नीलध्वज के प्रति जना

"नीलध्वज के प्रति जना" नामक पत्र मे हमे जना का जो चरित्र मिलता है वह माता तथा पत्नी के रूप मे इतनी महीयसी है कि उसके सामने सब क्लासिकल चरित्र फीके पड़ जाते है। जब पांडवो ने अश्वमेध का अश्व छोड़ा तो माहेश्वरीपुरी के युवराज प्रवीर ने उस अश्व को पकड़ लिया, इसके फलस्वरूप अर्जुन के हाथ से वह मारा गया। माहेश्वरीपति महाराज नीलध्वज ने इस पर युद्ध न कर अर्जुन से सन्धि कर ली, इस पर पुत्रशोकातुरा रानी जना ने अपने पति को लिखा—

"राजतोरण मे रणवाद्य बज रहा है, घोड़े हिनहिना रहे, हैं हाथी चिंघाड़ रहे हैं, आस्मान मे राजपताका फहरा रही है, राजसेना मस्त होकर हुंकार छोड़ रही है, किन्तु आखिर क्यो? क्या तुम इसलिये सज रहे हो कि प्रवीर बेटा का प्रतिशोध लिया चाहते हो और अर्जुन

के रक्त से मेरी शोकाग्नि को बुझाना चाहते हो ? यही तो महाराज तुम्हें फबता है, तुम क्षत्रियो के मणि तथा महाबाहु हो। जाओ मतवाले गजराज की तरह किरीटी के ऊपर सूँड़ो को आस्फालन करते हुए टूट पड़ो और उसका गर्व रणस्थल मे मेटकर उसके कटे हुए मुंड को ले आओ। उस मूढ़ ने अन्याय युद्ध मे एक बालक को मार लिया, जाओ महाबाहु जाकर उसे विनाश कर डालो। मैं इस ज्वाला को फिर भूल जाऊँगी। जन्म में मृत्यु तो खैर है ही, विधाता का यही विधान है। क्षत्रकुलरत्न वीर प्रवीर सन्मुख समर मे खेत मे रहकर स्वर्ग को गया है, उस पर रोने की बात ही क्या है। राजन तुम पृथिवी को पालो, क्षत्रधर्म को अपने भुजबल से पालो तो सही।"

"किन्तु यह क्या, जना ? तू क्या पागल हो रही है ? तुम्हारी सभा में नर्तकी नाच रही है, गायक गा रहा है, वीणा की ध्वनि उमड़ रही है, तुम्हारे पुत्र का हत्यारा तुम्हारे सिहासन मे बैठा है। अब शायद वह तुम्हारा सबसे ज़बर्दस्त मित्र है। तुम अब अपने अतिथिरत्न की बड़ी सेवा कर रहे हो कितनी लज्जा की बात है। दु:ख की यह कहानी मै अब कहू तो किससे ? क्या माहेश्वरी-पुरीश्वर नीलध्वज आज पुत्रशोक के मारे लुप्तबुद्धि हो चुके है ? जिस दारुण विधिना ने राज न तुम्हारा पुत्र हर लिया क्या उसीने तुम्हारी बुद्धि का भी सफ़ाया कर दिया ? नही तो भला मुझे समझाओ कि अर्जुन आज तुम्हारी पुरी का सम्मानित अतिथि किस नाते से हो रहा है ? कैसे तुम आज मित्ररूप से उस कर का स्पर्श करते हो जो प्रवीर के रक्त से रंजित हो चुका है। क्या क्षात्रधर्म यही है, तुम्हारा धनुष, तूण, अस्त्र, चर्म कहाँ है ? दुश्मन के सीने को चुभते हुए शरो का निशाना बनाने के बजाय क्या आज तुम उन्हे बातो से सभा में तुष्ट कर रहे हो ? जब तुम्हारी यह बातें फैलेंगी तो देशविदेशो मे लोग क्या कहेंगे"

"मै जानती हूँ लोग पार्थ को रथी श्रेष्ठ कहते है। झूठी बात, उसने भेष बदलकर स्वयंवर में लाखो राजाओ को उल्लू बनाया। ब्राह्मण समझकर उसके साथ किस राजा ने ढंग से लड़ाई की होगी? खांडव को दुष्ट ने कृष्ण की सहायता से जलाया, फिर शिखंडी की आड़ लेकर महापापी ने कौरवो के गौरव वृद्ध पितामह भीष्म को हराया। गुरु द्रोणाचार्य को उसने किस छल से मारा ज़रा सोचो तो। जब पृथिवी ने रुष्ट होकर महायशा कर्ण के रथ के पहियो को निगल डाला तब उस बर्बर ने कर्ण को मार डाला। मुझे बतलाओ तुम तो स्वयं महारथी हो। क्या यह सब महारथीपना है? यह तो व्याध का काम है कि छल से सिंह को मारता है, किन्तु सिंह अपने रिपु को पराक्रम से ही परास्त करता है।

"राजन, तुम क्या नही जानते हो न मालूम आज किस कारण पार्थ के सामने तुम्हारा सिर झुका हुआ। है क्या ब्राह्मण आज चंडाल के पैर की धूल लेगा?+++ किन्तु यह सब उलाहना व्यर्थ है तुम आखिर मेरे बड़े ही हो, यदि मै तुम्हारी भर्त्सना करूँ तो मै केवल पाप की भागी बनूँगी। मै कुलनारी, हूँ, विधिना का यही विधान है कि मै पराधीन हूँ। मुझमे वह शक्ति नही कि अपनी शक्ति से अपनी इच्छा पूर्ण करूँ। दुर्दान्त अर्जुन ने मुझे पुत्रहीना कर दिया, मालूम होता है विधाता ने इस कौन्तेय को इस कारण पैदा किया कि वह लोगो के सुख का नाश करता फिरे। तुम पति मेरे प्रति दुर्भाग्य से वाम हो रहे हो। फिर मै इस संसार मे जीऊँ तो किस लिये और क्यों? आज यह विपुल जनसंख्यावाली पृथ्वी मेरे लिये निर्जन हो चुकी है। इस जले हुए ललाट पर विधिना ने जो लिखा है वह अब होकर के ही रहा।"

"हाय मेरा प्रवीर! क्या इसीलिये तुझे मैने दस मास दस दिन तक कष्ट सहकर गर्भ मे धारण किया?++ क्या इसी प्रकार मा का ऋण चुकाया जाता है? हे आँखें क्यो तुम बरस रही हो?

कौन तुम्हारे आँसुओ को पोछनेवाला है ? हे मन क्यो तू जलता है ? अरे मणिहीन फणी तेरा शिरोमणि तो पांडव के शर से खंड खंड हो चुका, अब बांबी के अन्दर मुँह छिपाकर रोना ही तेरे लिये रह गया है। जाओ महावाहु अपने मित्र पार्थ के साथ जाओ, यह अभागी तो अब महायात्राकर इस संसार से जाती है। मै क्षत्रकुल-वाली हूँ और क्षत्रकुल वधू भी, कैसे मै यह अपमान सह सकती हूँ। मै तो जाकर जाह्नवी के जल मे अपना प्राण दिये देती हूँ। देखूँ यदि कृतान्त के यहाँ जाकर मेरे शोक का अन्त हो। मै हमेशा के लिये तुम्हारे चरणो से बिदा माँगती हूँ। जब तुम अपने प्रासाद मे लौटोगे तो यदि तुम "जना कहाँ है ?" करके पुकारो तो प्रति-ध्वनि जवाब देगी "जना कहाँ है ?"

नवीन साहित्य में व्यक्तिस्वातंत्र्य

कहाँ वैयक्तिक स्वतंत्रतालवलेश शून्य वैष्णव-कविता और कहाँ माईकेल की यह पग-पग पर अपने लिये स्वतंत्र रास्ता निकालकर झूमती हुई चलनेवाली कविता। माइकेल ने अपने इन भावो को जिससे आत्मप्रकाश मे कठिनता न हो अतुकान्त को अपनाया, किन्तु कृत्तिवास-काशीरामदास तथा पदावली के पयार छन्द को अपनाया, किन्तु उसकी गति बदलकर उसमे नये जीवनप्रवाह का संचार किया। वह युग ही ऐसा था कि सभी क्षेत्र मे नयेपन की गुंजाइश थी। आज बँगला इस मर्यादा को पहुँचा है कि उसमे सूक्ष्म से सूक्ष्म कविता तथा स्थूल से स्थूल विज्ञान लिखा जा सकता है, किन्तु मधुसूदन के युग मे भाषा नये युग के प्रयोजन बल्कि कहना चाहिये नये युग के सतत वृद्धिशील प्रयोजन के अनुसार पिछड़ी हुई थी। मधुसूदन को इसलिये वीणा धारण करने के लिये वीणा की लकड़ी काटनी पड़ी, तार बनाने पड़े तब वीणा पर आलाप शुरू किया। मधुसूदन की भाषा दुरूह है, उसमे संस्कृत के तत्सम शब्द, बड़े-बडे समास बहुत है, किन्तु "फिर भी" समालोचक मोहितलाल लिखते

हैं "माइकेल के शब्दो की दुरूहता ने बंगाली पाठको को उतना नहीं भरमाया जितना रवीन्द्रनाथ की भाषा की अनभ्यस्त शैली ने लोगों को परेशान किया।"

कविता और छन्द

कविता मे छन्द एक प्रमुख वस्तु है। अति-आधुनिक बँगला कविता मे हमे ऐसी कविता का साक्षात्कार होगा जिसमे छन्द नहीं है, याने कोई छन्द दिखाई नही पड़ता, एक नाटकीय ढंग से पढ़ना भर रह गया है। इसको हम (*rhythmic prose*) कह सकते हैं, लेकिन ऐसा तो हम सभी अतुकान्त यहाँ तक कि तुकान्त कविता को कह सकते है। अस्तु।

छन्द साहित्य की एक कृत्रिम पद्धति

आज बहुत से लोग छन्द को साहित्य की एक कृत्रिम पद्धति समझते है। वे आज छन्द के बन्धन से मुक्त होकर स्वेच्छाविचरण करना चाहते है, किन्तु कविगुरु रवीन्द्रनाथ ने कहा है यह बन्धन केवल बाहरी है। आन्तरिक रूप से यह मुक्त ही है। "शब्दो को उनके जड़धर्म से मुक्ति देने के लिये ही छन्द का तकाजा होता है। सितार का तार बँधा ज़रूर रहता है, किन्तु तभी तो उसमे से सुर मुक्त होकर बह सकता है। छन्द उसी प्रकार तार बँधा हुआ सितार है, शब्दों के आन्तरिक सुरलय को वह मुक्त कर देता है। छन्द धनुष के गुण की तरह है। उसके ज़रिये हृदय रूपी लक्ष्य को बेधकर ही मानता।" सुर जैसे हृदय पर एक रहस्यमय तरीके से अधिकार जमा लेता है, उसी प्रकार छन्द शब्दों मे एक सुरूर पैदा कर देता है जो परिभाषा की पकड़ मे नही आता। एक फ्रेञ्च समालोचक ने लिखा है छन्द का संगीत हमारी बुद्धिवृत्ति को थपकियाँ देकर सुला देता है, फिर उसके सामने एक स्वप्नलोक अवारित कर देता है, यही कविता की सफलता का रहस्य है।

बंगला के सरल छन्द

मधुसूदन ने इसलिये छन्द को तो नही त्यागा किन्तु अपनी प्रतिभा की विपुल दृष्टि से उसे अपने भावो के अनुरूप कर लिया। पदावली साहित्य के युग मे, मधुसूदन के युग मे और आज भी बॅगला छन्द एक बहुत ही सरल वस्तु है। हिन्दी छन्दो की तरह बॅगला छन्द को आयत्त करने के लिये किसी को पिंगल पढ़ने की या दीर्घ अभ्यास की जरूरत नही, यह भी एक कारण है कि बॅगला में कविता की इतनी उन्नति हो सकी। प्राचीन बॅगला मे सच पूछा जाय तो पयार, त्रिपदी, चौपदी आदि चार ही पॉच छन्द थे, इनके मिश्रण से जो छन्द होते थे वे मिश्र छन्द कहलाते थे। अवश्य भारतचन्द्र ऐसे कवियो ने सफलतापूर्वक कुछ संस्कृत छन्द की भी बॅगला मे आमदनी की, किन्तु ये छन्द बॅगला शब्दों की उच्चारण पद्धति के साथ सामंजस्य-हीन होने के कारण दूसरे कवियो ने उसे नही अपनाया। "त्रिपदी" दीर्घ त्रिपदी और चौपदी मे यति इकरस होते थे, फिर पग-पग पर तुक मिलाना पड़ता था, इस कारण मधुसूदन को जो बॅगला कविता उत्तराधिकार सूत्र मे मिली वह भाव-गदगद और रीढ़शून्य थी। मधुसूदन ने पयार को ही लिया, किन्तु उसको नये तरीके से ढाल-कर उसमे नये संगीत की सृष्टि की। यह असाध्य साधन वे अपनी भाषा की ही बदौलत करने मे समर्थ हुए। +

माइकेल और पयार

माइकेल ने इस पयार को ही महाकाव्य के सुर में बॉध दिया। इस प्रकार माइकेल ने केवल विचार-जगत मे ही एक बिलकुल नया जगत नही पेश किया, बल्कि उस विचार के लिये उपयुक्त वाहन का भी निर्माण किया। भाषा और छन्द यदि भावो से आगे निकल

+देखो आधुनिक बॅगला साहित्य, पृ: ११५

गये या पीछे रह गये तो कवि को सफलता नही मिलती, इसलिये अधिक या कम प्रत्येक कवि को अपनी भाषा तथा छन्द आदि तैयार करना पडता है। इसीको हम किसी कवि की शैली कहेगे। मधुसूदन ने जैसे पौराणिक नामो को लेकर उनको बिलकुल अपौराणिक आधुनिक बना दिया, उसी प्रकार उन्होने बँगला छन्दो मे विशेषकर पयार को ग्रहण करते हुए उसमे ऐसे परिवर्तन कर दिये जो वैष्णव कवियो के लिये अकल्पनीय थे। पयार में चौदह अक्षर होते है। "उसके आठ पैर होते, किन्तु उसको कितने प्रकार से चलाया जा सकता है इसका प्रमाण माइकेल के 'मेघनादवध' काव्य मे मिलता है। उस महाकाव्य की अवतारणा की प्रथम पंक्तियो को ही लीजिये। इन पंक्तियो मे ही उन्होने विभिन्न वजन का सुर अलापा है, किसी जगह पर भी पयार को उन्होने प्रचलित यतिस्थान पर रुकने नही दिया। पहिली पंक्ति में ही वीर-बाहु की वीरमर्यादा सुगंभीर होकर बज उठी—

सम्मुखसमरे पोड़ि वीर चूड़ामणि वीरबाहु (१)

फिर जैसे उनकी अकालमृत्यु का संवाद जैसे टूटी हुई रणपताका की तरह टूटे हुए छन्दो मे टूट पड़ा

चलि जबे गेला यमपुरे अकाले (२)

फिर जैसे छन्द ने झुककर मंगलाचरण किया

कह हे देवी अमृतभाषिणी (३)

फिर इसके बाद असली बात जो सबसे महात्त्वपूर्ण है, परिणाम की सूचना की तरह जैसे आनेवाली आँधी के सुदीर्घ मेघगर्जन की तरह क्षितिज की एक ओर से दूसरी ओर तक प्रतिध्वनित होती है—

---

(१) वीर चूड़ामणि वीरबाहु सन्मुखसमर मे खेत रहकर

(२) जब अकाल ही यमपुर चले गये

(३) तो बताओ हे देवी अमृतभाषिणी

कोन वीरवरे वरि सेनापति पदे
पाठाइलो रणे पुन. रत्नकुलनिधि
राघवारि(४)" यह माइकेल का चमत्कार है।"(५)

अतुकान्त होने के कारण कवि को कही तुक खोजने के लिये कही अपने भावो को कुंठित नही करना पड़ा।

कवि विहारीलाल चक्रवर्ती

इस युग के दूसरे प्रतिभावान कवि का नाम जैसा पहिले ही बताया गया विहारीलाल चक्रवर्ती था। "मजे कीबात यह है कि कवीन्द्र रवीन्द्र के अतिरिक्त और भी बहुत से समसामयिक कवि उन्हे अपना काव्यगुरु करके मानने पर भी उनको माइकेल मधुसूदन के मुकाबले मे बॅगाल के बाहर ही मे कम लोग जानते है ऐसा नहीं बल्कि बॅगाल मे भी वे कम प्रसिद्ध है। फिर भी बॅगला साहित्य में विहारीलाल का स्थान माइकेल से कुछ दूर नही है, बल्कि बाद को चलकर विहारीलाल की विशेप काव्य-साधना ही बॅगला साहित्य में अधिक रंग लाई। विहारीलाल की काव्यप्रेरणा मधुसूदन के मुकाबले मे और भी सरल और स्वत.स्फूर्त थी, साथ ही बॅगाली जाति के भावो के अनुकूल थी। इस दृष्टि से आधुनिक बॅगला काव्य के इतिहास मे विहारीलाल एक व्यक्ति नही बल्कि युग-प्रवर्तक थे।"+

विहारीलाल की कविता

विहारीलाल ने 'सारदामंगल, 'प्रेम प्रवाहिनी, 'वन्धुवियोग, 'निसर्ग सन्दर्शन,' 'बाउलविंशति' 'सङ्गीतशतक' आदि कई एक काव्यग्रन्थ लिखे, किन्तु आज बॅगाली समाज मे इनको पढ़नेवालों

---

(४)राघवारि रत्नकुलनिधि ने किस वीरवीवर को सेनापति पद मे वरण कर भेजा

(५)देखिए सहजपत्र चैत्र१ ३२५ में रवीन्दनाथ का छन्द लेख

+श्री मोहितलाल मजुमदार के आधार पर विहारीलाल मुख्यत: लिखा गया

की संख्या बहुत ही कम है। बात यह है विहारीलाल की प्रतिभा मुख्यत: *syric* थी, गीत गाते-गाते वे इतना विभोर हो जाते थे कि वे भूल ही जाते थे कि उनके सामने श्रोता है। उनकी उड़ान अत्यन्त *lubjective* (आत्मपरायण) उड़ान है । उनके काव्यो मे गम्भीरता और सकेन्द्रीयता जितनी हृदयस्पर्शी है, भाव की मूर्ति उतनी स्पष्ट नही है। इस कारण वे साहित्य मे एक नवीन रीति के प्रवर्तक होते हुए, भी साधारण कविताप्रेमी पाठक के प्रिय नही हो सके। मधुसूदन के मुकाबले मे तो वे कम पढ़े ही जाते है, किन्तु नवीनचन्द्र और हेमचन्द्र से भी वे कम पढ़े जाते है यह प्रथम दृष्टि में आश्चर्यजनक होते हुए इसका कारण स्पष्ट है, और वह यह है कि नवीनचन्द्र और हेमचन्द्र चाहे कवि रूप मे इनसे कितने ही निकृष्ट रहे हो , किन्तु उन्होने पलाशी का युद्ध आदि ऐसा विषय लिया था जो कितना भी बिगड़ता तो उसकी एक हद थी।

बिहारीलाल की भाषा

विहारीलाल की भाषा एक विशेष भाषा है । समालोचक कवि मोहितलाल के अनुसार उनके भाव शिशु की तरह सरल है तो उनकी भाषा भी शिशु की तरह नग्न अकृत्रिम है। विहारीलाल की यह भाषा ही जैसे उनकी काव्यरचना की विशेष प्रतिभामयी भाषा है। विहारीलाल के काव्य सारदामंगल' को पढ़ने से हमे उनकी भाषा की कला (जिसको *unpremeditated art* कहेगे) पग-पग पर ख़ूब देखने को मिलती है। कविवर कीट्स ने जिस प्रकार के कवि—स्वप्न को

—upon the night's starred face,
Huge cloudy symbols of a high romance

बतलाया है, उस प्रकार के रूप-रस की उत्कंठा उनमे नही थी। उनके काव्यो मे विचार से बढ़कर भाव, कल्पना से बढ़कर प्रीति-विभोरता जो नही है उसकी उदभावना से जो है उसीसे आनन्दलोकसृष्टि की साधना हम अधिक देखते हैं।

आत्मनिमग्न विहारीलाल

विहारीलाल की यह आत्मनिमग्नता कहीं इतनी अधिक हो जाती है कि वह पाठक के उपहास की वस्तु हो जाती है। समझ ही में नहीं आता कि इसमे कवितापन कहाँ है। अपने बाल्यबन्धु पूर्णचन्द्र की मृत्यु पर वे एक कविता लिख गये जिसमें वे मित्र की इसलिये प्रशंसा करते दिखाई देते है कि वे एक दिन गंगा नहा रहे थे, ऐसे समय मे एक नाव डूब गई। उस नाव का मल्लाह बच गया किन्तु उसका कपड़ा बह गया। वह किनारे पर कम पानी में आकर थरथर कॉपने लगा, किन्तु उसे हिम्मत न हुई कि किसी से कपड़ा मॉगे। पूर्णचन्द्र ने उसे अपना कपड़ा दे दिया और खुद अँगोछा पहिनकर घर चले आये। इस घटना को कवि ने नमक-मिर्च न मिलाकर ऐसे ही लिख दिया जैसे मैंने उसका विवरण लिखा। कहना न होगा यह कोई कविता नही है, किन्तु इससे वही बात साबित होती है जो मैं पहिले लिख आया याने कवि विहारीलाल को अपने ही भावों की परवाह है, श्रोताओं की नही। सौभाग्य से इस तरह की आत्मकेन्द्रित कविता उनकी रचना मे कम है। कुछ भी हो विहारीलाल की कविता इतनी सरल है कि हम सहज ही मे कवि के हृदय की धड़कन को गिन सकते हैं।

विहारीलाल की 'हिमालय' कविता

हिमालय को कविवर विहारीलाल किस प्रकार चित्रित करते है देखने की चीज़ है, नीचे जो कविता उद्धृत की जायगी उसमें पाठक देखेंगे कि हिमालय कोई प्रस्तरस्तूप नही, बल्कि रक्तमांसस्पर्शयुक्त एक विराट शरीर है, जिसके हृदय की धड़कन की यह कविता मानो स्वरलिपि (*Notation*) है। हम इस कविता मे साफ़ देख सकते हैं कि अब बॅगला साहित्य में रवीन्द्रनाथ जैसी विभूति आने ही वाली है। विहारीलाल की कविता मानो उस आनेवाली महान प्रतिभा

का पेशखेमा है। हम ज़रा कान खड़ाकर सुनें तो हमें रवीन्द्रनाथ के आने की गड़गड़ाहट सुनाई पड़ेगी। विहारीलाल लिखते है —

असीम नीरद नय
ओ-इ गिरि हिमालय
उथुले उठेछे जेनो अनन्त जलधि
व्येपे दिक दिगन्तर
तरंगिया घोरतर
लाबिया गगनांगने जागे निरवधि

यह हिमालय पहाड़ कोई सीमाहीन बादल नहीं है, बल्कि जैसे अनन्त समुद्र उमड़कर खड़ा हो गया है, सब दिशाओ को बड़े जोरो के साथ व्याप्त तथा तरंगित करता हुआ मानों वह आकाश रूपी आँगन को डुबाता हुआ निरवधि रूप से जाग रहा है।

पदे पृथ्वी, शिरे व्योम,
तुच्छ तारा सूर्य, सोम,
नक्षत्र नखाग्रे जेनो गनिबारे पारे
समुखे सारादाम्बरा
छड़िये रयेछे धरा,
कटाक्षे करवन जेनो हेरिछे ताहारे।

चरणो पर उसकी वसुन्धरा है, सिर पर आकाश है; सूर्यचन्द्र फिर उसके लिये तुच्छ क्यों न हों, वह तो जैसे नखाग्र से नक्षत्रो को गिन सकता है। सामने सागराम्बरा धरा फैली हुई है, कभी-कभी वह कटाक्ष से उसे देख भर लेता है।

कवशत अभ्युदय
कतई विलय नय

चक्रेर ऊपरे जेनो घटे क्षणेक्षणे

हरहर हरहर

सुरनर थर

प्रलय-पिनाक-राव बाजे ना श्रवणे

सैकड़ों अभ्युत्थान और पतन उसकी आँखों के सामने हरेक क्षण होते रहते हैं। हरहर हरहर, सुरनर थरथर काँपते हैं, किन्तु प्रलय का पिनाक रव उसे सुनाई भी नहीं पड़ता।

झटिका दुरन्त मेये

बुके खेला करे धेये

धरित्री ग्रासिया सिन्धु लोटे पदतले।

ज्वलन्त अनल छवि

ध्वकध्वक ज्वले रवि

किरन-जलन-ज्वाला माला शोभे गले।

आँधी तो उसकी एक शरारती लड़की भर है, वह दौड़-दौड़ कर उसके सीने पर खेलती है, धरित्री सिन्धु को ग्रसकर उसके पैर पर लोटती है। जलती हुई महान् आग की तरह सूर्य धकधक जलता है, किरणों की जलती हुई माला से उसका कंठ सुशोभित है।

कालेर कराल हासि

दमके दामिनी राशि

कक्कड़ दन्ते दन्ते भीषण घर्षण

त्रिजगत त्राहि त्राहि

किछुई भ्रूक्षेप नाहि

के योगेन्द्र व्योमकेश योगे निमगन

काल की कराल हँसी की तरह बिजली कौंद जाती है, दाँत से

दाँत पीसकर काल मानो कड़कड़-कड़कड़ शब्द करता है, तीनों भुवन त्राहि त्राहि करते है, किन्तु उसे किसी बात की परवाह नहीं, हे योगनिमग्न व्योमकेश तुम भला कौन हो ?

मानो कवि ने इस हिमालय मे भारतवर्ष को ही चित्रित कर दिया है, बाहरी प्रभाव के प्रति उदासीन, मुक्त, उदार, अपने मे आप समाहित।

विहारीलाल के युग के कुछ विशिष्ट कवियो की कविताओं का नमूना देकर हम इस दौर को समाप्त करेंगे।

कवि सुरेन्द्रनाथ मजुमदार

सुरेन्द्रनाथ मजुमदार नामक एक कवि इस युग में कहीं-कहीं पर बहुत अच्छी कविता लिख गये है। मुख्यतः इन्होने अनुवाद ही किये हैं, किन्तु इनकी एक मौलिक कविता मे कवि की वैयक्तिक स्वतंत्रता कितनी उग्र मालूम होती है

हे कवि-कल्पना माया सत्येर सोनालि छाया
काव्य-इन्द्रजाल-भानुमती,
सुखे तुमि यथा इच्छा थाको क्रीड़ावती।
चड़िया पुष्पक-रथे
भ्रमो गिया छायापथे
कर इन्द्रचाप-विरचन,
किम्वा करो परीसने चन्द्रिका भोजन,
आमि ना करिबो देवी तव आवाहन।

हे कविकल्पना रूपी माया, सत्य की सुनहरी छाया, काव्य रूपी इन्द्रजाल की भानुमती, क्रीड़ाशीले तुम्हें जहाँ भी रहना हो सुख से रहो। पुष्पक विमान पर चढ़कर चाहे छायापथ मे भ्रमण करो और इन्द्रधनुष बनाओ, या परियों के साथ जाकर चाँदनी मे भोजन करो; किन्तु देवी मैं तुम्हारा आवाहन नहीं करने का—

विधातार ए संसारे यारे ना तुषिते पारे—
जे कविर महती कामना,
से कबि कोरिबे देवी तव उपासना।
तोमार मुकुर परे
हेरे से हरषभरे
छाया तार काया नाही जार—
ततो लोकातीत नय वासना आमार
लक्ष्य मम सामान्य ए सत्येर संसार।

विधाता का बनाया हुआ यह संसार जिसे तुष्ट नहीं कर सकता, जिस कवि की कामना इससे महान् है, वही देवी तुम्हारी उपासना करेगा। वह तुम्हारे दर्पण मे आनन्द के साथ उस चीज़ की छाया देखकर ख़ुश होता है जिसका शरीर ही नही है? मेरी वासना इस प्रकार लोकातीत नहो है, मेरा तो लक्ष्य मामूली यह सत्य का संसार है।

ऊपर जो कविता उद्धत की गई उसको हम पाश्चात्य कवियो का अनुकरण कहकर उड़ा नही दे सकते क्योंकि उन्नीसवी सदी में पाश्चात्य कवि भी बहुत अंश मे चॉदनी भोजन करते थे। आजकल के उस भारतीय साहित्य के सम्बन्ध मे जो आधुनिक दीखते हुए भी आधुनिक नहीं है ऊपर उद्धत की हुई कविता एक अच्छी समालोचना है। यह भी देखने की बात है सुरेन्द्रनाथ ने अपनी कविता को (*Stanzas*) के रूप में लिखा है।

कविता में नारी की पूजा

हरेक युग की कविता में नारी की पूजा एक प्रधान चीज़ रही है। कविता की उत्पत्ति का फ्रायडीय सिद्धान्त को यह बात प्रतिपादित करती है। बॅगला के प्राचीन साहित्य में राधा, यशोदा;

कौशल्या के रूप में नारी की पूजा बहुत हुई है, किन्तु उर्वशी के रूप में नारी की पूजा इसी युग की विशेषता है। हम रवीन्द्रसाहित्य की आलोचना के अवसर पर इस बात पर आयेंगे; किन्तु "उर्वशी" लिखे जाने के पहिले उर्वशी भाव से नारी पूजा की एक बानगी हमें इन्हीं सुरेन्द्रनाथ मजुमदार की महिला कविता में मिलती है।

वर्णिते ना चाइ ह्रद नदी सरोवर
सिन्धु शैल वन उपवन;
निर्मल निर्झर, मरु बालुर सागर,
शीत–ग्रीष्म-वसन्त वर्तन।
हृदये जेगेछे तान,
पुलके आकुल प्राण
गावो गीत खुलि हृदि-द्वार—
महीयसी महिमा मोहिनी महिलार।

"मै झील, नदी, तालाब, सिन्धु, पहाड़, वन, उपवन, निर्मल झरना, बालू के सागर मरूभूमि या शीत, ग्रीष्म या वसन्त ऋतु के परावर्तन का वर्णन नहीं करना चाहता। मेरे तो हृदय मे तान जगा है, प्राण पुलकित हो रहा है, इसलिये मैं हृदय का द्वार खोलकर मोहिनी महिला की महीयसी महिमा गाऊँगा।"

आगे मूल न देकर बाकी कविता का अनुवाद ही दिया जाता है।

"मन की सुषमा का सविलाश विग्रह है, आत्मा के आनन्द की प्रतिमा है, कविता के ध्यान का जैसे साक्षात साकार है, माया की मुग्धमुखी मूर्ति है, हृदय के जितने काम्य हैं उन सबका संग्रह है। भला मैं रमणी के सम्बन्ध में आये हुए मेरे विचारों को कैसे समझाऊँ?" वह इस संसार रूपी फणी का मणि है, मंत्र है, महौषधि है।

इस कविता की कुछ पंक्तियाँ यों हैं—

एलोकेशे के एलो रूपसी

कोन वनफूल, कोन्, काननेर शशी

बालों को लटकाकर कौन यह रूपसी है, कौन-सा वन फूल है, किस कानन का शशी है।

रवीन्द्रनाथ की "उर्वशी" कविता मे एक जगह ऐसे आता है—

वृन्तहीन पुष्प सम आपनाते आपनि विकशि

कबे तुमि फूटीले उर्वशी

ऐसा मालूम होता है रवीन्द्रनाथ की नारी पर लिखी हुई यह सर्वश्रेष्ठ कबिता का संगीत सुरेन्द्र मजुमदार की ऊपर की पंक्तियो से मिलता है। अन्त में शी-शी (*she* ?) आने से कविता का रस जैसे बढ़ गया है।

इस युग में इतने कवि हुए हैं कि उनकी एक-एक पंक्ति भी दी जाय तो एक बड़ी भारी पुस्तक हो जाय। इसलिये केवल कुछ ही कविता देना संभव है। शिवनाथ शास्त्री की ख्याति मुख्यतः एक सुधारक के रूप में है, फिर भी उन्होने कुछ कवितायें लिखी हैं, उनकी "गभीर निशीथे" नामक कविता पाठकों के सामने पेश की जाती है। ध्यानपूर्वक पढ़ने पर जिसे हम कविता में (रहस्यवाद) (*Mysticism*) कहेंगे वह इसमे एक अस्पष्ट रूप मे मिलेगा।

गभीर निशीथ में

"कैसी गहरी रात है ? धरणी अन्धकार के सागर मे मग्न है, चारों तरफ़ सुनसान है, पहरेवाला कुत्ता भूक रहा है, उसकी यह आवाज़ शहर के इस कोने से उस कोने तक जाती है। मानों उसकी प्रतिध्वनि को इमारतें गेंद की तरह उछाल रहीं है। यह कैसी भयंकर बात है ? अगाध समुद्र के नीचे एक छोटा-सा कीड़ा जैसे

उसके नीचे की घास मे रहता है उसी तरह मै अपने कमरे में अन्धकार सागर के गर्भ मे डूबा हुआ हूँ। सब परिजन सोये हुए है, दिशाये कितनी चुपचाप है। रात के आकाश मे मानों कोई अदृश्य प्रहरी मुझे ज़ोर से सन-सन फुफकार रहा है। विश्व चौंका हुआ दृष्टिगोचर होता है। इस अगाध समुद्र के नीचे पड़ा-पड़ा मै पुकार उठता हूँ—'कौन हूँ मै? कौन हूँ मैं ओ रजनी! करोड़ों कीड़े-मकोड़े, गांव, प्रान्तो को लेकर यह जगत् घूम रहा है, अच्छा पहिले इस धरित्री से ही पूछा जाय—धरित्री तू कौन है? इस विश्व में तो तू एक धूल की कण है।—फिर मै, मैं कहाँ हूँ, और कल्पने, भारती स्मृति, मेरे प्यारे धन तुम लोग कौन हो? मैं कवि हूँ यह मेरा अहङ्कार है, मै कहाँ हूँ। ओह, मैं तो इस विश्व मे विलीन हो जाता हूँ. .....

देवेन्द्रनाथ सेन की कविता

कवि देवेन्द्रनाथ सेन तथा अक्षय कुमार बड़ाल रवीन्द्रनाथ के समसामयिक है अर्थात् थे, किन्तु फिर भी कई दृष्टि से उनकी कविता रवीन्द्रयुग के पहिले की कविताओ के साथ अध्ययनयोग्य है, इसलिये हम इस दौर मे ही उनकी कविता का नमूना देकर इस अध्याय को समाप्त करेंगे। देवेन्द्रनाथ क्या है यह उन्ही के अपने मुंह से सुनिये—

चिरदिन चिरदिन रूपेर पूजारी आमि
रूपेर पूजारी।
सारासन्ध्या सारानिशि रूपवृन्दावने वसि
हिन्दोलाय दोले नारी आनन्दे नेहारि।
अधरे रङ्गेर हास विद्युतेर परकाश
केशेर तरंगे नाचे नागेर कुमारी

वासन्ती ओढ़ना साजे प्रकृतिराधिका नाचे
चरणे घुङ्गुर, बाजे आनन्दे झङ्कारि
नगना दोलना कोले मगना राधिका दोले
कविचित्ते कल्पनार अलका उघारि'
आमि से अमृतविष पान करि' अहर्निश
संसारेर व्रजवने विपिनविहारी।

"हमेशा से हमेशा से मै रूप का पुजारी रहा हूँ, रूप का पुजारी। सारी सन्ध्या और सारी रात रूप वृन्दावन के हिंडोरे मे झुलुए का मजा लेती रहती है। मै इसको आनन्द के साथ देखता रहता हूँ। अधरो पर रँगीली हँसी है, मानों विद्युत का प्रकाश हुआ है, बालो की लहरों में मानो नागकुमारी नाच रही है। ओढ़ना वासन्ती रंग का है, प्रकृति रूपी राधा नाच रही है, कविचित्त मे कल्पना का उद्रेक होता है। इस अमृत-विप को मै दिन-रात पीता रहता हूँ, इस प्रकार मै संसार के व्रजवन मे विपिनविहारी हूँ।"

एक दूसरी कविता

देवेन्द्रनाथ सेन की रचनाये इस अमिट रूपपिपासा से ओत-प्रोत हैं, 'लखनऊ का शरीफ़ा' नामक कविता लीजिये। मामूली फलो को लेकर कविकल्पना किस प्रकार अबीरगुलाल की पिचकारी भरती हुई अठखेलियाँ करती चलती है—

"मै अनार नहीं चाहता जिसका रंग अभिमान से निष्ठुर व्रज-सुन्दरियो के होठो की लालिमा से मिलता है। मै सेव भी नहीं चाहता, जो विरहविधुरा जानकी के मुख-रुचि की पांडुरता लिये हुए है। ज़रा से रस से भरा हुआ अंगूर, जो नई बहू के लज्जा से दिये हुए चुम्बन की तरह है, भी मै नही चाहता। मै गन्ने का स्वाद भी नही चाहता जो प्रौढ़ दम्पतियो के प्रगाढ़ प्रेमालाप की तरह कठिन मे मधुर है। मुझे तो बस वह ऊँची पैदाइश का शरीफ़ा दो, जो लखनऊ के नवाबों के उद्यान मे रस से लबरेज लटकता रहता है,

सी नवाबज़ादी ने आकर छू भर दिया और फट पड़ा। अहा यह यु भी कैसी विचित्र है, किसी रसिका की रसना के ऊपर मरकर ई जाना।"

आँखिर मिलन

"आँखिर मिलन" नामक कविता लीजिये—

आँखिर मिलन ओ जे—आँखिर मिलन।
लोके ना बुझिलो किछु   लोके ना जानिलो किछु
दम्पतिर हलो तबुशत आलापन
हलो मन-जानाजानि   हलो मन-टानटानि
आशाय चिकन हासि मनेर रोदन;
विजयार कोलाकुलि   आँधारे श्यामार बुलि
प्रेमेर विरह-क्षते चन्दन लेपन
ओई आँखिर मिलन।

"यह तो आँखों का मिलना है आँखों का मिलना, न लोगों ने कुछ जाना, न लोनो ने कुछ कहा, फिर भी मियाँ और बीबी में सैकड़ों बातें हो गईं। एक ने दूसरे के मन को जान लिया, एक ने दूसरे को खींच लिया, आशा की चिकनी हँसी हो गई, या अभिमान का रोदन हुआ। दशहरे का मिलना हो गया, अँधेरे में जैसे श्यामा बोल गई, प्रेम और विरह के घाव पर चन्दन का लेप हो गया। बात यह है यह आँखों का मिलना था।"

अक्षयकुमार बड़ाल का 'आह्वान'

अब हम अक्षयकुमार बड़ाल की आह्वान नामक एक कविता का अनुवाद देकर इस दौर को समाप्त करते हैं। इस कविता में प्रकृति के साथ कवि का कितना निकट सम्बन्ध है, फिर उस सम्बन्ध को किस प्रकार दार्शनिकता मे अनुवाद किया गया। आधुनिक कविता केवल उपमा, उत्प्रेक्षा की अनवरत घनघटा नहीं हैं, यदि उसमें दार्शनिकता

नहीं है, जीवन की सैकड़ों दुर्दान्त पहेलियों पर एक झलक रोशनी नहीं है, जीवन का स्पन्दन नही है तो वह कविता ही नहीं है। कविता बड़ी है इसलिये केवल हम उसका अनुवाद ही पाठक के सामने पेश करेंगे—

"देखो प्रिया इस तरु-लता-पुष्प से भरी हुई तथा गिरि नदी सागर से समन्वित पृथिवी को, यह नग्न देह से तथा मुक्त प्राण से आकाश की ओर ताक रही है, न इसमे कोई लज्जा है न कोई छलना ही। फिर देखो उस महाकाश को जो मेघों की राशि के साथ रोशनी तथा अन्धकार लेकर पृथिवी के हृदय पर पड़ा है, न उसे घृणा है न अहंकार। ऊपर तो महाशून्य है और पैरों के नीचे भूमि है, बीच में तुम और मैं हूँ। देह है, भूख भी है, हृदय है और हम सुधा की तलाश कर रहे हैं। होना तो मृत्यु है, लेकिन हम अमरता की चाह करते हैं। दुःख है, किन्तु उससे बचत स्वरूप भ्रान्ति है; सुख है किन्तु उसमें श्रान्ति आ जाती है; त्याग है तो संग्रह भी है। जीवन क्या है आँधी में सागर की तरह आमरण उठना गिरना, मैं पूछता हूँ क्या तुम इसको निभा सकोगी? मेरे हाथों में हाथ रखकर क्या तुम मुझे समझ रही हो? क्या तुम मेरे मन प्राण सब की थाह पा रही हो। यह न तो मिट्टी ही है न शून्य ही है, पाप भी नहीं है पुण्य भी नही है, यह तो आत्मा से आत्मा को अनुभव करना है।"

"क्या तुम समझ रही हो कि इसमें कितना आनन्द है? कितना जन्म-मृत्यु, स्वर्ग-मर्त्य के द्वारा मैं तुम्हारा आह्वान करता हूँ। चित्र में, शिल्प में, गान में, मैं तुम्हारा ही ध्यान करता रहता हूँ। देखती नहीं हो हरेक पाषाण पर तुम्हारी रेखा है, तुम्हारे प्रणय का लेखा है, मर जड़ में तुम्हारी अमर महिमा है।"

"प्रेम का सुधापात्र लेकर आओ मेरी देवी, आओ मेरी दासी आओ मेरी सखी।"

२

कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ, और उनका दान

उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा

कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ केवल बँगला साहित्य के एक व्यक्तित्व नही बल्कि एक युग हैं, अपनी प्रतिभा की विपुलता, विविधता तथा भास्वरता के द्वारा एक शताब्दी की दो-तिहाई से वे बँगला साहित्य आकाश में जाज्वल्यमान हैं। उनकी प्रचंड दीप्ति के सामने पूर्ववर्ती साहित्यिक तथा कविगण टिमटिमाते-बुझते मालूम होते हैं, समसामयिकगणो की तो हालत जुगनुओ की तरह हो रही है, कभी मालूम होता है इस अनन्त आकाश मे केवल रवीन्द्रनाथ ही है, कभी मालूम होता है साथ मे वे भी है। कवीन्द्र रवीन्द्र केवल बँगला के कवि ही नही, नाटककार, औपन्यासिक, दार्शनिक, चित्रकार, समालोचक, राष्ट्रीय लेखक, भाषातात्विक, वैयाकरणिक, अभिनेता सभी हैं। कलामय अभिव्यक्ति का शायद ही कोई विभाग बचा हो जिसमे उन्होने सफलता के साथ हाथ न लगाया हो। उनकी प्रतिभा जिस दिशा मे भी गई उसी दिशा मे नवीन पथ काटकर फूलो की फ़सल खिलाकर रख दिया। कहने को कहा जाता है विहारीलाल उनके काव्य गुरु थे। बात यह है इस अभागे देश में कान फूँकनेवाला न हो तो कोई सिद्ध नहीं होता। वे स्वयं भी इस बात को प्रतिभा के ही योग्य उदारता के साथ मानते है, किन्तु सच बात तो यह है कि एक छत्ते मे कहाँ-कहाँ का शहद आकर एक सामंजस्यपूर्ण मिठास मे परिणत हो गय है, यह मधुमक्खी स्वयं भी नहीं कह सकती।

वे केवल माइकेल की तरह मधुकर नहीं

फिर कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ का काम केवल दूसरे फूलों के शहद

लाकर सामंजस्यपूर्ण रूप से एक छत्ते में इकट्ठा कर देना ही नहीं था, बॅगला काव्य साहित्य मे यदि इस कार्य को किसी बड़े कबि ने किया है तो वे माइकेल है न कि रवीन्द्रनाथ। माइकेल ने लिखा है "मै ऐसा मधुचक्र (छत्ता) बनाऊँगा, जिस पर वंगवासी गौरव करेंगे।" उन्होंने वाक़ई एक छत्ता बनाया स्मरण रहे इस काव्य मधुचक्र का निर्माण कोई मामूली काम न था, अंग्रेज़ कवि मिल्टन ने भी ऐसा ही किया था। *Paradise Lost* मिल्टन की सब से बड़ी तथा सुन्दर साहित्यिक कृति है। १७२७ मे प्रसिद्ध फ्रेञ्च समालोचक वालटेयर ने ही पहिले-पहल बतलाया कि *Giovanni Battista Andreini* के *Adamo* नामक एक पौराणिक नाटक को (१६३८-३९) देखकर ही मिल्टन ने *Paradise Lost* महाकाव्य की परिकल्पना की। बिलियम लौडर (*William Lauder*) नामक एक लेखक ने तो खुल्लमखुल्ला *Inquiry into the origin of Paradise Lost* मे मिल्टन को चोरी का दोषी बतलाकर सनसनी पैदा कर दी। एक उच कवि *Joost van den Vondel* की एक रचना '*Lucifer*' से भी इस मिल्टनीय महाकाव्य का सम्बन्ध बतलाया गया। यह तो केवल दो-एक बातें हुई, इसी प्रकार इस महाकाव्य के सम्बन्ध में सैकड़ो बाते खोजनेवालो ने खोजी। फिर भी अंग्रेज़ी साहित्य में मिल्टन एक महाकवि ही माने गये, क्योंकि उन्होंने अगर कही से कुछ लिया तो उसको इतना परिवर्तित (*transform*) कर दिया कि उसकी आत्मा तक बदल गई। यह साहित्य का एक बहुत ही टेढ़ा प्रश्न है कि दूसरों के भाव कहाँ तक अपनाये जा सकते हैं, इस पर स्वयं मिल्टन का ही मत सुन लिया जाय। उन्होंने लिखा है *Such kind of borrowing as this if it be not bettered by the borrower, among good authors is accounted Plagiary.* +++ *It is not hard for any man who hath a Bible in his hands to borrow good words and holy sayings in abundance, but to*

make them his own work of grace only from above.

"इस प्रकार का भाव-ग्रहण जिसमे ग्रहण के बाद भाव सुन्दर-तर नहीं हो जाते अच्छे साहित्यिको की दृष्टि में चोरी कहलाती है। +++ किसी भी व्यक्ति के लिये यह आसान है कि हाथ में बाइबल लेकर सुभाषित या पवित्र कहावते अधिक से अधिक कह डाले, किन्तु उनको अपनी बना लेना केवल ईश्वर-कृपा से ही संभव है।"

माइकेल के सामने मिल्टन से कहीं व्यापक तथा विविधतर साहित्य खुले हुए थे। संस्कृत साहित्य का काव्यभाग किसीभी समृद्ध भाषा से कम पीछे नहीं था, माइकेल के सामने वे सब साहित्य खुले हुए थे ज़ो मिल्टन के सामने खुले थे, इसके अलावा संस्कृत का विराट काव्य-साहित्य खुला था। याद रहे गेटे संस्कृत की शकुंतला पर सबसे ज्यादा मुग्ध हुए थे, यद्यपि उनके सामने सब विश्व साहित्य था।

बंकिम और रवीन्द्रनाथ

रवीन्द्रनाथ माइकेल नहीं थे, फिर रवीन्द्रनाथ को यदि केवल कहा जाय कि वे प्राच्य और पाश्चात्य साहित्य के समन्वयकर्त्ता है, तो यह भी ग़लती होगी। यह बात ज़रूर है कि प्राच्य और पाश्चात्य में जो कुछ भी उत्कृष्ट है वह रवीन्द्रनाथ मे आ कर एकत्र हुए किन्तु प्राच्य पाश्चात्य का यह मिलन बहुत से और व्यक्तियों मे हुआ, किन्तु वे रवीन्द्रनाथ क्या नीम-रवीन्द्रनाथ भी नही हुए। बॅगला साहित्य में ही बंकिमचन्द्र को लिया जाय, बंकिमचन्द्र बहुत बड़े साहित्यिक थे, रवीन्द्रनाथ के पहिले बॅगला साहित्य के नेता, पुरोधा, ऋत्विक वही थे। उनकी प्रतिभा से ही बँगला साहित्य को आभिजात्य की मर्यादा प्राप्त हुई थी, किन्तु फिर भी वे रवीन्द्रनाथ नहीं थे। रवीन्द्रनाथ केवल बॅगला साहित्य के ही एक युग के प्रवर्तक तथा पुरोधा है यह बात नहीं, विश्वसाहित्य में उनका दान एक अभिनव प्रकार का है। हमारे हिन्दी साहित्य में रवीन्द्रनाथ के प्रभाव का परिमाण कम नहीं

है। ऐसे ही सभी भारतीय साहित्य में एक नये युग का प्रवर्तन रवीन्द्र-नाथ से हुआ। केवल यही नही यूरोपीय साहित्यों में रवीन्द्रनाथ का प्रभाव बहुत से कवियो में स्पष्ट है, इसको बहुत से यूरोपीय समालोचकों ने भी माना है।

रहस्यवादी कविता मुख्य दान नहीं

इस स्थान पर हम विशेषकर कवि रवीन्द्रनाथ से ही सम्बन्ध रखते हैं, किन्तु यह पहिले ही बतलाया गया है कि वे एक युगान्त-रकारी गद्यकार भी है। मजे की बात यह है कि यूरोप मे।रवीन्द्रनाथ की ख्याति मुख्यत: एक रहस्यवादी कवि के रूप मे है, किन्तु उनकी अधिकांश कविता और कुछ भी हो *mystical* या रहस्यवादी नहीं है। 'कथा ओ काहिनी' 'बलाका' आदि उनकी कई सर्वोत्कृष्ट रचनायों का रहस्यवाद से कोई सम्बन्ध नही है। वे रचनायें तो मध्याह्न-सूर्य की तरह स्पष्ट है। उनमें कोई रहस्य नहीं। गद्य मे तो रवीन्द्रनाथ शायद ही कहीं रहस्यवादी रूप में आते है, 'अचलायतन' 'गोरा, 'घरे बाइरे' किसी की भी न तो बनावट और न उद्देश्य ही रहस्यवादी है। बल्कि जिस ज़माने में यह कृतियाॅ पहिले प्रकाशित की गई, उस समय कुछ लोगो ने यही शिकायत की कि इनमे प्रचार कार्य बहुत ज्यादा है। समग्र रवीन्द्र-नाथ को विश्लेषण करने पर देखा जायगा कि सब बातें कहने के बाद नेति-नेति कहते-कहते वे कलाकार भर रह जाते हैं।

"रवीन्द्रनाथ की काव्य-प्रतिभा मुख्यत: गानधर्मी (*lyrical*) है। यह बॅगाली काव्य प्रतिभा की विशेषता है, किन्तु उसके मूल में कल्पना की जो शैली है वह भारतीय साहित्य तथा काव्य-पन्था के अनुरूप न होने पर भी वह भारतीय साधना के आदर्श से अनु-प्राणित है। रवीन्द्रनाथ की तरह विशुद्ध भारतीय मानस-प्रकृति बंकिमचन्द्र की भी नहीं है, बल्कि उस दृष्टि से देखा जाय तो बंकिमचन्द्र भारत से कहीं बढ़कर यूरोप के मानसपुत्र हैं। रवीन्द्र-

काव्यों में जो बात दिखाई पड़ती है उसमे भारतीय तत्त्वचिन्ता की प्रेरणा का एक बड़ा भाग है। भारतीय भावसाधना की जो विशेषता रही है वह यह है कि उसने हमेशा समस्त जगत् को एक रस-चेतना मे अपने अन्दर कर लिया है, वह हमेशा भाव को लेकर तृप्त रही है। रूप की अरूप साधना ही इस प्रतिभा की विशेषता थी। +++रूप में भाव को प्रत्यक्ष करना या रूप की भाषा मे इसे प्रकाश करना कवि का काम हो सकता है यह इस भावुकता-सर्वस्व जाति ने कभी सोचा भी नहीं था।"+

ऊपर की विश्लेषणपद्धति को यदि हम सच मानें तो कवित्व की दो मुख्य धारायें होती है, एक रूप की भावसाधना, दूसरी भाव की रूप साधना। मै समझता हूं मोहितलाल ने ऐसा लिखकर कविता के साथ अन्याय किया है,,क्योंकि भाव और रूप (*Idea and form*) के अलावा भी कवि का मन एक तीसरी चीज़ है जिसको हम भूल नही सकते। श्रेणीविभाग के खब्त मे हम यह भूल नही सकते कि प्रत्येक कवि का हृदय एक विभिन्न चीज़ है। हाँ हम चाहें तो कवि हृदयों को भी श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं, किन्तु फिर भी एक-एक कवि स्वयं ही एक एक श्रेणी है। मैं पहिले ही लिख चुका हूँ कि 'कथा ओ काहिनी' 'वलाका' 'गीतांजलि' में हम रवीन्द्र की कवि-प्रतिभा का विभिन्न रूप देखते हैं, हाँ हम चाहे तो इन सब विशेष कवि-प्रतिभा को एक श्रेणी में ले जा सकते है, किन्तु उस हालत में हमारी श्रेणी बहुत व्यायक श्रेणी होगी। शायद हमे कवि कहकर के ही सन्तोष करना पड़े। रवीन्द्रनाथ की एक बहुत ही प्रसिद्ध कविता उर्वशी है, किन्तु इस कविता में कुछ भी रहस्य (*mysticism*) नहीं है। रवीन्द्रनाथ को अंग्रेजी 'गीतांजलि' पर नोबुल पुरस्कार मिला, इसी पर वे *mystic* कहलाये, किन्तु मै इस बात को गंभीरता के साथ चुनौती देता हूँ की वह केवल एक रहस्यवादी कवि

+देखो आधुनिक बाँगला साहित्य पृ—१७१

हैं। रवीन्द्रनाथ के गीतों का अक्सर झुकाव इसी ओर है, किन्तु गीतों को छोड़ दिया जाय तो भी उनकी काव्य रचना विराट है। रवीन्द्रनाथ ने अपनी *mystic* रचनाओं को ही विश्वसाहित्य के दरबार मे पहिले-पहल अंग्रेजी अनुवाद मे पेश किया यह कोई आकस्मिक बात नहीं थी। मालूम होता है वे जानते थे कि यह एक नई धारा है जिसकी यूरोप के विद्वानों मे क़द्र होगी, इसलिये उन्होंने खास करके इसी चीज़ को विश्व के सामने पेश किया। किन्तु इससे यह नीचोड़ निकालना कि रवीन्द्रनाथ रहस्यवादी ही है ग़लत है। हॉ कविता-जगत मे रहस्यवाद का जो रूप उन्होंने पेश किया है वह बिलकुल नवीन है और कला के जगत मे वह उतना ही नया है जितना विज्ञान जगत में *Roman effect* या रेडियम हैं।

उनके रहस्यवाद का विश्लेषण

फिर रवीन्द्रनाथ जहॉ रहस्यवादी है वहॉ भी वे निरे रहस्यवादी इस अर्थ मे नहीं है कि रूप से भाव मे चले जाकर रह जाते हैं, इस माने मे तो विहारीलाल उनसे अधिक रहस्यवादी जान पड़ेगे क्योंकि वे रूप से भाव मे गये, और वहीं जाकर बैठ रहे। इससे विपरीत हम रवीन्द्रनाथ को 'भाव से रूप मे तथा रूप से भाव में अनवरत आवागमन' करते देखते है। रवीन्द्रनाथ के रहस्यवाद की यही विशेषता मालूम देती है। रवीन्द्रनाथ की यह भाव साधना ऐसी है कि उसमे भारतीय अध्यात्मवाद को एक नवीन भोगवाद को समर्थन करने के लिये विवश किया गया है। रवीन्द्र-साहित्य मे मनुष्य जीवन को एक महिमा प्राप्त हुई, जो प्राचीन साहित्य में कहीं नहीं थी। हमारे प्राचीन साहित्य में देवताओं के जरिये से मानव को देखने की प्रथा थी, स्वर्ग के देवताओं की नरलीला ही एक शब्द में सारे प्राचीन साहित्य का विषय है, किन्तु रवीन्द्रनाथ के साहित्य में हम मनुष्य के माध्यम से देवता को देखते है।

रवीन्द्र-प्रतिभा को एक वाक्या में परिभाषा करने की चेष्टा करते हुए कवि मोहितलाल मजुमदार ने लिखा है "रवीन्द्रनाथ की कल्पना-शक्ति के मूल मे अन्तर और बाहर, भाव और वस्तु, विचार और अनुभूति की एक सामंजस्यमूलक गीतिप्रवणता है। इसी से उनके मन की मुक्ति है। इस मुक्ति के आनन्द मे उनकी कल्पना सभी विरोध तथा सभी संस्कारों को पार कर एक ऐसी रसभूति में अधिष्ठान करती है जहाँ जीवन का सब असामंजस्य तथा वास्तविकता की सब विषमताये कवि के प्राण मे भावैक-परिणाम रागिणी में समाहित होती है।" मुझे फिर कहना पड़ा नेति। रवीन्द्रनाथ एक नाम होने पर भी इस नाम के अन्दर बीस विभिन्न कवि मौजूद है, रवीन्द्रनाथ ने अपनी काव्य-लक्ष्मी को जो 'जगतेर माझे कतो विचित्र तुमि हे, तुमि विचित्र रूपिणी' कहकर वन्दना की है, असल में यह अक्षरश: सत्य है। सचमुच कवि रवीन्द्रनाथ विचित्र है, और पाठको के प्राण मे विचित्र रूपो से आते है। हम आगे उनके कुछ रूपो पर इस अध्याय मे रोशनी डालेगे।

भाषा पर रवीन्द्रनाथ का प्रभाव

बॅगला भाषा को रवीन्द्र ने जो कुछ दिया है उसकी तूलना नही है। उनकी प्रतिभा के वरद स्पर्श से बॅगला भाषा को जो संगीत और नमनीयता प्राप्त हुई वह अतुलनीय है। बाद को बॅगला को शायद और रवीन्द्रनाथ के समान प्रतिभाशाली पैदा करने का गौरव प्राप्त हो, किन्तु बॅगला भाषा को रवीन्द्रनाथ जिस प्रकार बदल गये, उस बदलने-बनाने का गौरव फिर किसी को नहीं मिलेगा। आज बॅगला मे रवीन्द्रनाथ के पैदा होने का फल यह हुआ है कि इस भाषा मे वैज्ञानिक भी लिखता है तो उसकी भाषा में कविता का पुट होता है।

रवीन्द्रनाथ बॅगला में अकेले

भाषा की दृष्टि से रवीन्द्रनाथ का प्रभाव इस प्रकार सर्वव्यापी

होने पर भी, रवीन्द्र-धारा के बहुत ही कम सफल अनुयायी बँगला भाषा मे पैदा हुए है। इसके बहुत से कारण बताये गये है, किन्तु मै समझता हूं इस का एक प्रधान कारण यह भी है कि रवीन्द्रनाथ ने स्वयं ही अपनी शैली की सारी संभावनाओ को अपनी सुदीर्घ साहित्यिक आयु मे खतम कर डाला, दूसरा कारण यह है कि सारे रवीन्द्र-साहित्य का मूल रवीन्द्रनाथ के विपुल व्यक्तित्व मे था, उस से चारो तरफ के समाज से उतना ही सम्बन्ध था जितना एक तार से झूलते हुए टब मे रोपे हुए पेड़ का जमीन के साथ होता है। महर्षि देवेन्द्रनाथ के पुत्र रवीन्द्रनाथ मे प्राच्य और पाश्चात्य की सब से अच्छी बातें थी। रवीन्द्रनाथ लड़कपन से ही स्कूल से फ़रार रहे, किन्तु उन्होंने इन्ग्लैण्ड मे जाकर अंग्रेजी का अध्ययन किया देश मे भारतीय साहित्य को अध्ययन किया। रवीन्द्रनाथ का व्यक्तित्व जरूर चारो तरफ के भारतीय समाज की ही उपज है, किन्तु यदि जन-साधारण की दृष्टि से देखा जाय तो उससे उनका ऊपर बताये गये टब मे कैद पौधे की तरह कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। हाँ एक बात मे रवीन्द्रनाथ का सम्बन्ध जनता से बहुत क़रीब है, वह यह कि उनकी सांगीतिक आत्मा बिलकुल बँगाल की जनता की सांगीतिक आत्मा के साथ अभिन्न है। जर्मन कवि गेटे की तरह जनता के संगीत (*folk music*) से रवीन्द्रनाथ ने अनुप्रेरणा ली है, यह एक कारण है कि रवीन्द्रनाथ के काव्य मे एक मादक आकर्षण है जिससे बचना मुश्किल है।

रवीन्द्रनाथ मध्यम श्रेणी के कवि

यह सब कुछ कह चुकने पर भी रवीन्द्रनाथ का गद्य तथा पद्य मध्यम श्रेणी का साहित्य है। कहा जाता है हमारे देश मे केवल इसी श्रेणी का साहित्य हो सकता था, क्योंकि जिसको जनता कहते हैं उसका अस्तित्व इतना निम्नकोटी का है, क़रीब क़रीब पाशविक है कि वह साहित्य का विषय ही नही हो सकता। ऐसा जो लोग

142259 861-H / 601

कहते है वे कहते है जिन लोगो मे न अभिसार है न विरह की तड़प, न *courtship* है, न प्रेमभिक्षा है, बस एक तरह से जबर्दस्ती कामपिपासा शान्त करना भर है उनमे प्रेम की कविता क्या हो सकती है ? यह एक बहुत ही टेढ़ा प्रश्न है, मौलिक कारणो पर बिना गये इन पर कुछ .फैसला नही हो सकता, फिर भी साहित्यिक ढंग पर ही मै एक बात कहना चाहता हूँ।

रवीन्द्र के ताजमहल की समालोचना

वह यह कि कवीन्द्र ने ताजमहल पर एक सुन्दर कविता लिखा है, इसमे इस ऐतिहासिक इमारत को एक विरही के प्रेम-अर्ध्य के रूप मे नमालूम कितने तरीकों से देखा, समझा, दिखलाया गया है। यदि कोई मान भी ले कि यह एक सम्राट का अपनी प्रियतमा के प्रति प्रेम-अर्ध्य है, या उसके आँसूओं का प्रस्तरीभूत रूप है इत्यादि, फिर भी यह कैसे कहा जा सकता है कि एक ग़रीब स्त्री जो अपने स्वर्गगत पति की मिट्टी की क़ब्र पर जाकर रोज़ शाम को बिलानागा एक छोटा सा दीया जला आती है, और जाकर चार आँसू रो आती है, जिनसे सीचे जाकर एक गुच्छा दूब हरी बनी रहती है, उसका वह छोटा सा मिट्टी का दीया जो शायद उस स्त्री के पीठ फेरते ही बुझ जायगा, या वह घास का गुच्छा किस भाँति उस ताजमहल से निकृष्ट है ? क्या प्रेम के राज्य में इस सिक्के का दाम उस सिक्के से कम है, क्या प्रेम के राज्य मे भी रुपयो से चीज़ें छोटी बड़ी होती है ? इस पर यह कहा जा सकता है कि मिट्टी का दीया कला की वस्तु नही, किन्तु ताजमहल है; किन्तु इससे साफ हो जायगा कि ताजमहल की भावुकतापूर्ण व्याख्या (जो कवीन्द्र की ताजमहल नामक कविता का विषय है) से ताजमहल के बड़प्पन का कोई सम्बन्ध नही है। इस व्याख्या का खोखलापन इस बात से और भी ज़ाहिर हो जाता है कि मुमताज के अलावा

शाहजहाँ की और भी प्रियायें थीं। इस बात के मालूम होने के बाद ताजमहल प्रेम के मीनार (*monument of love*) के बजाय शायद गर्व का मीनार जँचे।

भाषा पर अमिट प्रभाव

ऊपर जो कुछ कहा गया उससे शायद रवीन्द्रनाथ के साथ कुछ अन्याय हो इसलिये यह कह देना आवश्यक है कि दुनिया के ६० फी सदी साहित्य के विरुद्ध यह समालोचना की जा सकती है। ज़माना बदल रहा है, भविष्य के कवियों की वीणायें दूसरे सुर मे बँजेगी इसमे सन्देह नही, किन्तु बँगला साहित्य मे कुछ भी हो, उसके आदर्शों में कितनी ही क्रान्ति हो, फिर भी भाषा के रूप मे रवीन्द्रनाथ बँगला भाषा को जो सौन्दर्य नमनीयता और रूप दे गये उसके ऋण से उऋण कम से कम कोई बँगला भाषी नही हो सकता।

इस अध्याय मे हम पहिले भी कह चुके है और फिर भी कहते है कि रवीन्द्रनाथ केवल एक रहस्यवादी कवि ही नही जैसा कि यूरोप में लोग कहते है और समझते है, और भारतवर्ष मे उसकी देखादेखी लोग कहते रहे है। मैने यह भी बतलाया इस ग़लती की उत्पत्ति अंग्रेज़ी गीतांजलि से हुई। अंग्रेज़ी गीतांजलि को पढ़कर लोगो ने कहा रवीन्द्रनाथ रहस्यवादी कवि है, लोग इस भूल को बारबार कहते गये बस यह एक सत्य ही हो गया। रवीन्द्रनाथ ने जो और हज़ारो कवितायें लिखी थी जिनसे रहस्यवाद से कोई सम्बन्ध नही थे, जो केवल सौन्दर्य की एक-एक लड़ियाँ थी, उनको लोग भूल गये, और रवीन्द्रनाथ एक रहस्यवादी कवि ही हो गये। मुझे आश्चर्य है कि रवीन्द्र-काव्य के बँगाली समालोचको तक ने इस अजीब बात को कम लोगो मे आविष्कार किया और वे इस भूल के प्रवाम में बहते चले गये। अंग्रेज़ी मे ही *Golden boat*

(सोनार तरी) नाम से रवीन्द्रनाथ की कविताओं का एक अनुवाद निकला इसमे शायद दो चार कविता हो जिनमे रहस्यवाद हो, किन्तु फिर भी रवीन्द्रनाथ रहस्यवादी ही रहे। दो एक उदाहरण लिया जाय, पाठक स्वयं ही अपनी राय क़ायम कर ले।

एक नक्षत्र की आत्महत्या

एक नक्षत्र आकाश से पागल की तरह समुद्र के काले पानी में कूद पड़ा। करोड़ो दूसरे नक्षत्रो ने इस आत्महत्या को भीत तथा चकित होकर देखा, देखा कि किस भाँति प्रकाश का एक परमाणु जो उनके साथ था बात की बात मे अन्धकार मे विलुप्त हो गया। यह जाकर समुद्र के चट्टानी गर्भ तक पहुँच गया जहाँ सैकड़ो नक्षत्र जिनका प्रकाश लुप्त हो चुका, बिखरे पड़े हुए थे।

आखिर इस आत्महत्या की मर्म-कथा क्या थी? केवल मै ही जानता हूँ कि उसकी इस रौनक़ मे कौन सी बात उसे खाये जारही थी।

यह अनवरत हँसी की यन्त्रणा थी। एक जलता हुआ कोयले का टुकड़ा अपने कालेपन को छिपाने के लिये हँसता है। जितना ही वह हँसता है उतना ही वह जलता है। उसी तरह यह नक्षत्र हँसा और उज्वल हो गया। फिर जब जलने की यन्त्रंणा उससे और बर्दाश्त नहीं हुई तो वह प्रकाश के जगत से समुद्र के ठंडे कालेपानी मे कूद पड़ा।

करोड़ों उज्वल नक्षत्रो ने इस पतित नक्षत्र की ओर देखा, और वे घृणा से हँस पड़े।

उनलोगो ने कहा—"भला हमें क्या हानि है, आकाश तो उसी तरह उज्वल बना है।"

यदि कोई तुला हुआ ही हो तो इस कविता का भी रहस्यवादी अर्थ हो सकता है, किन्तु जैसी यह है वह बिना व्याख्या के ही हमारी समझ में आती है। इसकी किसी आध्यात्मिक या अतीन्द्रिय व्याख्या की जरूरत नहीं।

एक दूसरी कविता लीजिये—

प्रेतात्मा *The Ghost*

जब वृद्ध मरने लगा तो सारे देश ने रोया पीटा, सिर धुना और कहा प्रभो तुम्हारे बगैर हमारा काम कैसे चलेगा ?"

वृद्ध मन ही मन यह सोचकर परेशान हो रहा था कि यदि मैं मर गया तो इनको राहेरास्त पर कौन कायम रक्खेगा। हाय ?

देवताओं ने जाति की प्रार्थना सुन ली, और यह हुक्म दिया कि वृद्ध मरने पर प्रेत हो कर देश मे रहेगा। मनुष्य तो मर जाते है किन्तु प्रेत अमर होते है ?

जाति की जान मे जान आई।

बात यह है जब दृष्टि भविष्य पर निवद्ध होती है तभी परेशानी होती है, जब आँखें केवल भूतकाल पर रहती है तो परेशानियाँ ख़तम हो जाती है। फिर तो सारी ज़िम्मेदारियो को भूतकाल के सिर मढ़ दिया जाता है, और भूतकाल एक प्रेत के रूप मे जीता है।

फिर भी कुछ लोगो ने हर बात पर भूतकाल से अनुप्रेरणा लेने के बजाय सोचना चाहा। प्रेत ने उनके कान पकड़ कर खींचे, बात यह है उसकी कंकालमय ऊँगलियो से कोई बच तो सकता ही नहीं था।

आँखो को तथा मन को बन्द कर सारा देश प्रेत के नेतृत्व में चलने लगा। बूढ़ो तथा विद्वानो ने कहा—इसी प्रकार चलना ही पृथिवी की पुरानी परिपाटी के अनुसार है। जीवन की उषा के समय दृष्टिशक्तिहीन सरीसृप *amoeba* भी इसी तरह चलते थे, पेड़ पौधे अब भी ऐसा करते है, इसी मे उनकी वुद्धिमानी है।

प्रेताविष्ट जाति ने बड़बूढ़ो की यह बात जो सुनी तो उनमें आनन्द की एक लहर दौड़ गई कि उनके बाप दादे ऐसा ही करते थे, और आदिम पृथिवी के आदिम सरीसृप तक ऐसा ही करते थे।

देश के चारो ओर कारागार की तरह एक चहार दीवारी बन

गई, हॉ ये दीवारें अदृश्य थी, इसलिये कोई भी जानता नही था कि इनको कैसे पार किया जाता है या इनसे कैसे भागा जा सकता है।

कैदी जाति प्रेत के नेतृत्व मे गुलामी करती रही। कड़े परिश्रम का नतीजा यह हुआ कि विद्रोह का जोश जाता रहा। वह डरपोक हो गई फलस्वरूप इस प्रेत के राष्ट्र मे चाहे स्वास्थ्य, अन्न, वस्त्र की कमी हो, किन्तु शान्ति की कमी नही रही।

ऐसे ही दिन बीतते गये। जाती सन्तोष मे रही, मानो वह प्रेत के गाडे हुए इस्पात के खूॅटे मे बॅधा हुआ एक भेड़ का बच्चा हो।

किन्तु दिक्कतें पैदा होने लगी। पृथिवी की किसी और जाति पर प्रेत का राज्य नही था, इसलिये दूसरे देशो मे उन्नति का रथ जल्दी-जल्दी आगे ही बढ़ता गया। ऐसी जातियॉ थी जिन्होने प्रेत की प्यास बुझाने के लिये एक भी बूॅद रक्त नही दिया था, इसलिये उनकी शक्ति न क्षय होने के कारण वे बिलकुल जिन्दा थे।

बूढ़ों ने भूतकाल की अपनी पोथियों तथा पत्राओं को देखा और एक स्वर से कहा—दोष न तो हमारा है, न तो हमारे शासक प्रेत का ही है, बल्कि समस्याओ का ही है। भला इन समस्याओ का क्या काम था कि ये होती ?

जाति ने जब बूढ़ो की इन बारीक बातोको सुना, तो उसे तसल्ली हुई।

किन्तु दोष चाहे किसी का हो, समस्याओ की वृद्धि को कौन रोक सकता था ? कुछ दिनो के अन्दर समुद्र पर से टिड्डियो की तरह विदेशियो के झुंड आने लगे और फसलो से भरे खेतो को चाट डालने लगे। ये विदेशी व्यवहारिक बुद्धि के व्यक्ति थे, इनमे काम करने की शक्ति थी तथा दूरदर्शिता थी। प्रेताविष्ट होने के कारण जाति ने या तो इनकी अवज्ञा की थी, या इनसे दूर रही जिससे कि कही धर्मनाश न हो जाय। तब बूढ़ो ने फिर किताब खोली, और कहा—वे ही सौभाग्यवान हैं जो दुनिया के रगड़ो-झगड़ों से दूर रहते हैं।

लोगो ने सुना, और उनके हृदय को तसल्ली हुई।

किन्तु फिर भी वह प्रश्न जो लोगों को परेशान कर रहा था हल नहीं हुआ · "फिर इन उजड़े हुए खेतो से लगान कैसे दिया जाय।"

कब्रिस्तान से हहराती हुई एक हवा आई जैसे किसी प्रेत की हॅसी हो, उसने कहा—अपनी इज्जत से दो, हृदय के रक्त से दो, अपनी आत्मा से दो।

जब प्रश्न आते है तो उनकी झड़ी सी लग जाती है।

इसलिये एक दूसरा प्रश्न उठा क्या प्रेत का राज्य चिर स्थायी है?

दादे और दादियाॅ धक से रह गई, कहाॅ—हमने ऐसा प्रश्न कभी सात जनम मे नहीं सुना था, भला यह भी कभी हो सकता है कि यह राज्य न रहे।

प्रेत के कर्मचारियो ने व्यग की हॅसी हॅस कर कहा—कोशिश करके देखो कि कभी यह अदृश्य दीवारे टूट भी सकती है।

सच बात तो यह है कि भूतकाल न तो मरा ही था न जिन्द था, बल्कि यह प्रेत रूप मे था। कभी न तो इसने देश मे कोई उथल-पुथल ही मचाया, और न वह देश को छोड़कर चला ही गया।

एक या दो आदमी जो दिन मे मुह इसलिये नही खोलते थे कि कहीं राजद्रोह न हो जाय, उन्होने रात को प्रेत से कहा—प्रभो क्या अभी तुम्हारा जाने का समय नहीं हुआ?

तब प्रेत हॅसा और बोला—अरे सरल हम कैसे तुझे छोड़कर जा सकते है जब तू हम से जाने को नहीं कहता।

उन लोगो ने कहा—प्रभो हम मे से बहुतेरे तुम्हारे जाने के नाम से घबड़ाते है।

प्रेत फिर हॅसा।—"तुम्हारे भय के स्तंभ पर ही मै राज्य कर रहा हू"—उसने कहा

रूढिवाद पर आघात

यदि कोई कहे कि इस कविता मे कुछ भी रहस्यवाद है तो

हम नही मानेंगे, यह तो बूढ़े धर्मपीड़ित भारतवर्ष का एक चित्र है। इसका उद्देश्य स्पष्ट है। कवि के हृदय में भारतीयो के रूढ़िवाद से चोट लगी है, यह कविता उसी का स्फुरणमात्र है। फिर भी इस कविता में उद्देश्य ही सब कुछ नही है। जिस कलामय तरीके से यह कहा गया है वही उसको कविता बनाता है। हम इसी प्रकार की कवीन्द्र की सैकड़ो कविता दिखा सकते हैं जहाँ रहस्यवाद फटकता भी नही।

काव्यमय कहानी

रवीन्द्रनाथ की बहुत सी कवितायें ऐसी हैं जिन्हे हम काव्यमय कहानी कह सकते है, इनमे किसी एक भाव को लेकर अत्यन्त कलामय चुभती हुई भाषा मे एक कहानी कही गई है, पाठक के हृदय मे एक टीस या आनन्द की लहर छोड़ जाती है। यह कहा जा सकता है कि इन कहानी मूलक कविताओ मे कवि अपनी कला के शिखर पर नही पहुँचे, किन्तु यह बात ग़लत है। आश्चर्य तो बल्कि इस बात से होती है कि दिनानुदैनिक छोटी घटनाओ को लेकर कवि कैसे कला के उत्तुंग सौध का निर्माण करते है।

मुक्ति

डाक्तोर जा वले बलुक नाको
राखो राखो खुले राखो
शिओरेर ओई जानला दुटो, गाये लागुक हावा।
ओषुध ? आमार फुरिये गेछे ओषुध खावा।
तितो कड़ा कतो ओषुध खेलाम ए जीवने,
दिने दिने क्षणे क्षणे।
बेंचे थाका, सेन्ई जेनो एक रोग;

+ पूरी कविता न देकर हम केवल उसका अनुवाद देरहे हैं, पाठक इस कविता के छन्द को देखे

कतो रकम कविराजी, कतोई मुष्टियोग
इत्यादि+

"डाक्टर चाहे जो कुछ भी कहे, रहने दो, सिराहने के उन दो जँगलों को खुले रहने दो, जरा बदन में हवा लगने दो। दवा? दवा पीना मेरा खतम हो चुका है। जिन्दगी में मैंने कितनी ही दवा खाई, रोज खाया, क्षण क्षण खाया। वैद्य की दवा खाई, फुटकर दवा खाई, किन्तु क्या फायदा? जरा इधर से उधर हुआ नहीं कि फिर वही। यह अच्छा यह खराब, जो जो कुछ कहता था सब की बातों को मानती हुई, घूँघट काढ़-कर मैंने तुम्हारे घर में बाईस साल काट दिये। तभी तो घर में और घर के बाहर सभी मुझे लक्ष्मी कहते हैं, अच्छी बतलाते हैं। इस घर में मैं नौ साल की एक लड़की आई थी, फिर इस परिवार की गली से होकर तमाम लोगों की इच्छा का बोझ उठाती हुई मैं अपने रास्ते के अन्त में पहुँची।

"सुख दुख की बात जरा सोचूं इतना समय नहीं था। यह जीवन अच्छा है, या बुरा, या और कुछ, कुछ आगापीछा सोचूँ इतना मौका कब मिला। एक इकरस क्लान्त धुन में काम का चक्का घूमता रहा। बाईस वर्ष तक मैं एक ही चक्के में बँधी रही, घुमनी में अन्धी बनी हुई। मुझे मालूम ही नहीं हुआ मैं क्या हूँ, मुझे यह भी मालूम नहीं हुआ कि यह पृथिवी भी कोई चीज है और उसका कोई अर्थ भी है मैंने यह कभी नहीं सुना कि मनुष्य की कोई वाणी है जो महाकाल की वीणा में झंकृत हो उठती है। मैं सिर्फ यही जानती थी कि पकाने के बाद खाना है, और खाने के बाद पकाना है, बाईस साल तक मैं एक ही चक्के में बँधी रही। अब मालूम होता है वह चक्का बन्द होने वाला है। तो होने न दो। अब दवा की क्या जरूरत?

बाईस वसन्त आये थे, 'गन्ध से विह्वल दक्षिण वायु ने जल

और स्थल मे एक उत्तेजना पैदा की थी। उसने चिल्ला कर कहा होगा—खोलो किवाड़े खोलो—किन्तु मै भला कब जान पाती थी कि वह कब आई और कब सिर टकराकर चली गई। शायद वह धीरे से आकर मेरे मन को छू देती थी, शायद उससे घर के काम मे कुछ गलती हो जाती थी, हृदय मे जैसे कोई पिछले जन्म की व्यथा छू जाती थी, अकारण ही जैसे किसी के पैर की आहट सुनकर विह्वल फागुन मे मन उचट जाता था। तुम शाम को दफ्तर से लौटते थे, फिर कही मुहल्ले मे शतरंज खेलने जाते थे, जाने दो उन बातो को। हाय आज यह सब क्षणिक व्याकुलता की बातें क्यो याद आ रही है?

आज पहिली बार बाईस वर्ष के बाद वसन्त इस घर मे आया है। जॅगले से आकाश की ओर ताकते हुए मन आनन्द से सिहर-सिहर उठता है। आज मुझे मालूम हो रहा है कि मै नारी हूं, महीयसी हूं, मेरे ही सुर मे निन्द्रा-हीन चन्द्रमा ने अपनी ज्योत्स्ना रूपी वीणा को बाँधा है। यदि मै न होती तो सान्ध्य नक्षत्र का निकलना व्यर्थ होता, तथा बाग मे फूलो का खिलना अर्थहीन होता।

बाईस वर्ष तक मै तुम्हारे इस घर मे कैदिन थी। फिर भी उसके लिये दुःख नही था, बात यह है सुधबुधहीनता मे दिन बीत जाते थे, यदि जीती तो और भी बीत जाते। जहॉ पर जो भी हमारे रिश्तेदार थे वे मुझे लक्ष्मी कहते थे, मानो इस जीवन मे ऐसी कहलाना ही मेरी परम सार्थकता थी। घर के कोने मे रहना, और वही से लोगो की इस किस्म की तारीफे सुनना। आज न मालूम कब, मेरे बन्धन की वह रस्सी कट गई। आज वहॉ पर जहॉ जन्म तथा मृत्यु एक कूलहीन मुहाने में जाकर मिल गई है, वहाँ मैं देखता हूॅ कि रसोई खाने की दीवारे ज़रा से फेने की तरह विलीन हो गई है। इतने दिनो में मालूम होता है पहले

पहल विवाह की वंशी विश्व-आकाश मे बज रही है। तुच्छ बाईस साल आज घर के कोने के धूल मे पड़े रहे। मृत्यु की सुहाग रात में आज जो मुझे बुला रहा है वह मेरे द्वार मे प्रार्थी बनकर आया है, वह केवल मेरा प्रभु नही है, इसलिये वह मुझे अवहेला नही करेगा। मुझ मे जो सुधारस है वह आज उसे माँग रहा है। ग्रहताराओं की सभा मे वह निर्निमेष नेत्रो मे वह मेरे मुंह की ओर टकटकी लगाये खड़ा है। यह भुवन मधुर है, हे मेरे अनन्त भिखारी मेरे मरण, व्यर्थ बाईस वर्षों से मुझे काल के पारावार मे पार कर दो। +

पीड़िता नारी के साथ सहानुभूति

इस कविता मे कुछ भी रहस्यवाद नही है। नारी विशेष कर भारतीय नारी की अत्यन्त मर्मभेदी कहानी इसमे है। नारी की दयनीय पराधीन दशा का इसमे चित्र है। सच है, इसमे नारी को आधुनिका की तरह विद्रोह की तलवार झनझनाते नही सुनते परन्तु उसे एक *fatalist* या भाग्यवादी की तरह अपने अन्त का आवाहन करती हुई पाते है, किन्त क्या यही हमारे यहाँ की नारी का सचा चित्र नही है ? उर्वशी तथा अन्य ऐसी कविताओ मे कवीन्द्र ने नारी को कल्पना के रंगीन चश्मों से देखा है किन्तु बंगाली मध्यवित्त श्रेणी की नारी का जो चित्र 'मुक्ति' कविता मे दिखलाया गया है वह वास्तविक है।

रवीन्द्रनाथ की उर्वशी

रवीन्द्र-समालोचना मे उनकी उर्वशी की आलोचना एक मुख्य वस्तु है। कवि मोहितलाल ने इस कविता की विस्तृत आलोचना की है, हम पहिले इसको उद्धृत करेंगे फिर अपना वक्तव्य कहेंगे वे लिखते हैं।

+पहली बार यह कविता सबुजपत्र (वैशाख १३२५) में छपी

रवीन्द्रनाथ की उर्वशी नामक कविता भाषा, छन्द तथा चित्र-रचना के इन्द्रजाल की दृष्टि से कितनी भी मनोहर हो, उसमे कवि अपनी मूल कल्पना से हट गये है। उर्वशी का जो चित्र इसमे प्रकट हुआ है उसमे सौन्दर्य देवी कामना की देवी के रूप मे दृष्टिगोचर होती है। उर्वशी को कामना की देवी रूप मे देखने में किसी को आपत्ति नही हो सकती, बल्कि उसका यही रूप यहाँ पर रंग लाता है, किन्तु बात तो यह है कि कवि ने उर्वशी को आदर्श सौन्दर्य की आदि प्रतिमा रूप मे कल्पना कर ऐसे चित्र तथा विशेषणो का प्रयोग किया है कि उनसे विरोध की उत्पत्ति हुई है। कवि ने इस कविता मे कामना को जो रूप दिया है वह पाठक को मुग्ध करता है, किन्तु इस कामना के ही उन्होने सौन्दर्य का जो आदर्श खड़ा किया है, ज़रा सोचकर देखा जाय तो वह इस कल्पना का विरोधी मालूम होगा। इसलिये सौन्दर्यतत्व की दृष्टि से मै इस कविता का ज़रा विश्लेषण कर दिखाना चाहता हूं।

कवि कहते हैं,

आदिम वसन्तप्राते उठेछिलो मन्थितो सागरे,

डान हाते सुधापात्र विषभांड लये वाम करे।

'उर्वशी' आदिम वसन्त के प्रातःकाल मे सागर को मन्थित कर उठी थी, उसके दाहिने हाथ मे अमृत का पात्र और बायें हाथ मे विषभांड था।' अच्छी बात है, किन्तु जहाँ पर विषभांड की भावना थी वहाँ विशुद्ध सौन्दर्यानुभूति की बात नही आ सकती, काम या प्रेम की ही बात बड़ी हो उठती है। *A thing of beauty is a joy for ever* ,विशुद्ध *aesthetic pleasure* जहाँ है वहाँ विष भी अमृत हो उठता है। उर्वशी का रूप जिस कामना को उद्रेक करता है उसमें

मुनिगण ध्यान भाँङि देय पदें तपस्यार फल

तोमार कटाक्षघाते त्रिभुवन यौवन चंचल
अकस्मात पुरुषेर वक्षोमाझे चित्त आत्महारा,
नाचे रक्त धारा।

अर्थात् 'मुनियों का ध्यान टूट कर वे अपनी तपस्या फल तुम्हारे चरणों मे सौपते है, तुम्हारे कटाक्ष के आघात से त्रिभुवन यौवन-चंचल हो जाता है, अकस्मात पुरुष के हृदय मे चित्त अपने को खो बैठता है, उसके रक्त की धारा नाच उठती है'

कवि किस सौंन्दर्य की वन्दना कर रहे है ? कवि ने जिस का उद्बोधन

नहो माता, नहो कन्या, नहो वधू

याने 'माता नही हो, कन्या नही हो, वधू नही हो' कहकर किया है, वह चाह 'उषा के उदय की तरह अनवगुंठिता, और 'अकुंठिता' हो, किन्तु उसके कटाक्ष के आघात से यदि त्रिभुवन यौवन चंचल हो उठै, तो भी माता, कन्या या वधू न होना उसके लिये गौरव की वस्तु नही हो सकती, वह मोहिनी है तथा समाधि के लिये विघ्नस्वरूपा वैश्या मात्र है; इसलिये 'उसका सर्वाङ्ग निखिल के नयन के आघात से रोयेगा' यह अधिकतर सत्य है। इस प्रकार सौन्दर्य का उदय केवल आदियुग मे ही नही हरेक युग मे मानवचित्त मे होता रहता है; यह सौन्दर्य स्वर्ग का उदयाचल नही है, मर्त्य का उदयाचल और अस्ताचल उभया-चलवासी है। इसके लिये जो क्रन्दन है वह आदि युग से आज तक निरवच्छिन्न रूप से होता जा रहा है। इस कविता मे परस्परविरोधी कल्पना का और भी प्रमाण यह है कि जिसे कवि ने बालिका के रूप में अँधेरे सागर के नीचे अकलकिह हास्यमुख मे प्रवाल के पलँग मे सोते देखा है और जिसको यौवन में अपने कटाक्ष के आघात से त्रिभुवन को यौवन-चंचल करते देखा है उसी को कवि पूछते हैं

वृन्तहीन पुष्पसम आपनाते आपनि विकशि'
कबे तुगि फूटिते उर्वशी ?

याने 'वृन्तहीन पुष्प की तरह अपने मे आप विकसित होकर उर्वशी तू कब खिली ?'

प्रश्न तो यह है रवीन्द्रनाथ की तरह कवि की कल्पना में ऐसी गड़बड़ी क्यो आ गई ? इसका एक मात्र उत्तर यह है कि यूरोपीय काव्य के अत्यधिक प्रभाव के कारण कवि अपने कवि-धर्म को भूल गये है, इसलिये कल्पना मे सामंजस्य भी जाता रहा । यह उर्वशी न तो लक्ष्मी है, न वेद पुराण की उर्वशी ही है, न रवीन्द्रनाथ के अपने मन की ही कोई सृष्टि है। यह उर्वशी काम जननेे-*Aphrodite* का नया यूरोपीय संस्करण है—"*Mother of Love*" और "*Mother of Strife*" यूरोपीय काव्य मे सौन्दर्य के साथ कामना तथा वेदना की अपूर्व उत्कंठा युक्त होकर साहित्य को जो मनुष्य जीवन की वास्तविकतम अनुभूति की प्रकाशकला मे परिणत किया है, जिसके मर्मस्थल से *Our sweetest songs are those that tell of saddest thought* कवि को यह कातर उक्ति निकलती है, रवीन्द्र-नाथ यहाँ पर सौन्दर्य के उसी आदर्श से खिंच गये है, किन्तु इस प्रकार खिंच जाने पर भी रूप की यह पार्थिवता तथा इन्द्रिय-सर्वस्वता को उन्होने तहेदिल से ग्रहण नहीं किया है। इसलिये उनकी उर्वशी 'नन्दनवासिनी' तथा सुरसभा की नर्तकी होने पर भी वे उसे

'स्वर्गेर उदयाचले मूर्तिमती तुमि हे उपसी'

याने 'स्वर्ग के उदयाचले में तुम मूर्तिमती उषसी हो यह कहकर ऋषि के ऋकमंत्र से उसे वंदना करते नहीं हिचकते। फिर उसी के नृत्य के सम्बन्ध मे कहते है—

छन्दे छन्दे नाचि उठे सिन्धुमाझे तरङ्गर दल
शस्यशीर्षे शिहरिया काँपि उठै धरार अंचल

याने 'उसके छन्द मे समुद्र मे लहरेनाच उठतीहैं तथा फसल के सिर पर पृथिवी का ऑचल कॉप उठता है।' जो ऐसी कामना-लेशहीन प्राकृतिक सौन्दर्य की महिमा में महिमामयी है, जिसके 'स्तनहार से दिगन्त के नक्षत्र गिर पड़ते है', उन्ही के 'कटाक्ष के आघात से त्रिभुवन यौवन चंचल हो जाता है' और 'पुरुष के वक्ष मे चित्त आत्महारा होता है और 'रक्त की धारा नाचने लगती है।' उर्वशी की कल्पना में यह परस्परविरोधी भाव ने कविता मे रस के पूर्ण परिपक होने मे बाधा पहुँचाई है। कामना को जो दिशा इसमें स्पष्ट हुई है उसको पूर्ण रूप से प्रकट नही किया गया, उर्वशी के बाये हाथ मे कवि ने जो विषभांड दिया है उसमे अनन्त यौवना उर्वशी का वह कटाक्ष का आघात और

जगतेर अश्रुधारे धौत तव तनुर तनिमा,
त्रिलोकेर हृदि-रक्ते आँका तबो चरण-शोणिमा—

याने 'जगत की अश्रुधारा से तुम्हारे तनु की तनिमा धुली है और तुम्हारे पगचिन्ह त्रिलोक के हृदय के रक्त से अंकित हैं' तथा 'मुक्तवेणी विवसना' आदि कहने से कवि के मन मे जिस रस की उत्पत्ति होती है वही इस कविता का प्रधान रस है। वह कामना और कामना की विषजर्जर क्रन्द्रन-उत्तेजना करने में ही यहाँ *sweetest song* की सार्थकता है। जिस अंग्रेजी कविता का प्रभाव इस कविता पर है मुझे ऐसा विश्वास है कि वह *Swinburne* की *Atlanta in Calydon* है उसके सुविख्यात *chorus* से कुछ उद्धृत करने पर ही पाठक समझ जायेंगे कि मैने इस प्रभाव की बात को क्यो कहा है, और यह भी समझेंगे कि स्विनबर्न की इस कविता में रस कितना गाढ़ और उज्ज्वल हो गया है, इसके विपरीत रवीन्द्रनाथ की कल्पना (चूँकि वह रक्तमांस का विक्षोभ तथा काम की प्रधानता स्वीकार नहीं करता) इन्द्रियार्थ को अतीन्द्रिय भावविलास मे कितनी ग्रस्त हो कर रह गई है।

स्विनबर्न की *Aphrodite*

स्विनबर्न कहते हैं

An evil blossom was born
Of sea-foam and the frothing of blood
Blood-red and bitter of fruit
And the seed of it laughter and tears
And the leaves of it madness and scorn
A bitter flower from the blood
Sprung of the sea without root
Sprung without graft from the years.
The weft of the world was untorn
That is woven on the day on night
The hair of the hours was not white
Nor the raiment of time overworn
When a wonder, a world's delight
A perilous goddess was born;
And the waves of the sea as she came
Clove, and the foam at her feet
Fawning, rejoiced to bring forth
A fleshy blossom, a flame
Filling the heavens with heat
To the cold white ends of the north

++ ++ ++

What hadst thou to do being born,
Mother, when winds were at ease,
As a flower of the springtime of corn
A flower of the foam of the seas?

For bitter thou wast from thy birth
Aphrodite , a mother of strife,
For before thee some rest was on earth
A little respite from tears.
Earth had no thorn, and desire
No sting , neither death any dart ,
What hadst to do amongst these
Thou, clothed with a burning fire,
Thou, girt with sorrow of heart,
Thou, sprung of the seed of the seas
As an ear from a seed of corn
As a brand plucked forth of a pyre,
As a ray shed forth of the morn
For division of soul and disease
For a dart and a sting and a thorn ?
What ailed thee then to be born ?
\+ + + *But thee*
Who shall discern and declare
In the uttermost ends of the seas
The light of thine eyelids and hair,
The light of thy bosom as fire
Between the wheel of the sun
And the flying flames of the air ?
Wilt thou turn thee not yet nor have pity ,
But abide with despair and desire.
And the crying of armies undone
Lamentation of one with another
And breaking of city with city ;

The dividing of friend against friend
The severing of brother and brother
Wilt thou utterly bring to an end
Have mercy, mother

इस कविता को मैने संक्षेप मे उद्धृत किया। रवीन्द्रनाथ की 'उर्वशी' पर इस कविता का प्रभाव है। यह प्रश्न इस क्षेत्र में अप्रासंगिक है। रवीन्द्रनाथ ने अभी हाल ही मे अनुकरण और स्वीयकरण (अपना कर लेने) में जो भेद बताया है वह इस समय याद दिलाना चाहता हूं। रवीन्द्रनाथ की कल्पना मे स्विनबर्न की *Aphrodite* ने बहुत कुछ आवेग पहुँचाया है इसका यथेष्ट प्रमाण उद्धृत अंशो से मिलेगा। स्विनबर्न की एफ्रोडाइट का सौन्दर्य जैसे

An evil blossom +++ blood red and bitter of fruit +
And the seed of it laughter and tears

उसी तरह रवीन्द्रनाथ की उर्वशी
+++ उठेछिलो मन्थितो सागरे,
डान हाते सुधापात्र, विषभांड लये वाम करे +
स्विनबर्न की *Aphrodite* जैसे

Sprung of the sea without root
Sprung without graft from the years

उसी तरह कवीन्द्र उर्वशी को प्रश्न कर रहे है
वृन्तहीन पुष्पसम आपनाते आपनि विकशि—
कबे तुमि उठिले उर्वशी ? (१)

+सागर को मन्थित कर दाहिने हाथ मे सुधापात्र और बायें हाथ में विषभाँड लेकर उठी थी।

(१) हे उर्वसी तू वृन्तहीन पुष्प की तरह अपने में आप विकसित होकर कब उठी ?

हाँ स्विनबर्न की *Aphrodite* उर्वशी की तरह नर्तकी नहीं है, फिर भी उर्वशी के नृत्य के छन्द में जैसे समुद्र की लहरें तथा शस्य शीर्ष में धरा का अंचल तरंगित हो उठता है, किन्तु एफ्रोडाइट के सौन्दर्य की व्याप्ति तथा विकास इसी तरह का है

In the uttermost ends of the sea
The lights of thine eyelids and hair

यहाँ एफ्रोडाइट से उर्वशी में कवि की कल्पना अधिक स्फूर्ति पा सकी, किन्तु

The lights of thy bosom as fire
Between the wheel of the sun
And the flying flames of the air?

इन पंक्तियों का *paraphrase*

तब स्तनहार हते दिगन्तेर खसि पड़े तारा (२)

ने रवीन्द्र की उर्वशी के सौन्दर्य को स्निग्ध कर दिया है, *flying flames of the air* से 'तारे छिटक पड़ते है, सैकड़ों गुना *suggestive* हुआ है, फिर

Wilt thou turn thee not yet nor have pity
But abide with despair and desire

और

जगतेर अश्रुधारे धौत तवो तनुर तनिमा
त्रिलोकेर हृदि-रक्ते आँका तव चरण-शोणिमा

आदि की विचार-शैली विभिन्न होने पर भी, या कहीं-कहीं जैसे

And the waves of the sea as she came

---

(२) तेरे स्तनहार से दिगन्त के नक्षत्र छिटक पड़ते हैं।

Clove, and the foam at her feet
Fawning
तरङ्गित महासिन्धु मन्त्रशान्त भुजङ्गेर मतो
पड़ेछिलो पदप्रान्ते, उच्छ्वसिनो फरण लक्ष शत
करि अवनत+

एक दम अनुवाद-सा होने पर भी, दोनो मे जो प्रभेद है उससे उर्वशी कविता दुर्बल हो गई है, कल्पना की जहाँ समता है वही पाठक मुग्ध होता है। दोनो के सौन्दर्य का मूल कारण कामना है। इस कामना को ही रवीन्द्रनाथ ने एक स्निग्ध अतीन्द्रियता से मंडित करने की चेष्टा की, किन्तु वे असफल रहे, इसके विपरीत केन्द्रीय भाव ही दो हिस्सो मे बट जाने के कारण रसाभास हुआ है।

सौन्दर्य कल्पना की वह दिशा (जिसने मनुष्य की कामना को प्रदीप्त कर साहित्य के एक बड़े भाग को उज्ज्वल किया है) इसमे प्रकट हुई है।

मोहितलाल की उर्वशी समालोचना को मै उद्धृत कर चुका, किन्तु और भी थोड़ा उद्धृत करने की आवश्यकता है जिससे कि उनकी पूरी बात पाठक के सामने आ जाय। वे कहते है

रवीन्द्रनाथ में सौन्दर्य का एक दूसरा आदर्श

रवीन्द्रनाथ के काव्य में ही सौन्दर्य का एक दूसरा आदर्श प्रकट है, मै संक्षेप मे उसका उल्लेख करूँगा, आलोचना जिससे बढ़ न जाय मै उसको उद्धृत नही करूँगा, केवल दिशा भर बता दूंगा। 'बलाका' की 'दुइ नारी' शीर्षक कविता में रवीन्द्रनाथ ने उर्वशी और लक्ष्मी दोनो के रूप का वर्णन किया है, फिर लक्ष्मी के सौन्दर्य को ही तरजीह देकर उसी पर मुग्ध हुए हैं। "चित्राङ्गदा"

+तरङ्गित महासिन्धु मन्त्रशान्त भुजङ्ग की तरह पदप्रान्त मे गिर पड़ा था, उसने अपनी लाखों उच्छ्वसित फणाओं को अवनत कर लिया था।

काव्य मे चित्राङ्गदा का स्वर्गीय रूप-लावण्य देखकर अर्जुन के चित्त मे जो चमत्कार पैदा हुआ था वह यो है

केनो जानि अकस्मात
तोमारे हेरिया बुझिते पेरेछि आमि
कि आनन्दकिरणेते प्रथम प्रत्यूषे
अन्धकार महार्णवे सृष्टि-शतदल
दिग्विदिके उठेछिलो उन्मेषितो हये
एक मुहूर्तेर माझे +++
++++ चारिदिक हते
देवेर अङ्गुलि जेनो देखाये दितेछे
मोरे, ओई तव अलोक आलोक माझे
कीर्तिक्लिष्ट जीवनेर पूर्ण निर्वापण।

या अन्यत्र

भाविलाम

कत युद्ध, कत हिंसा, कत आड़म्बर
पुरुषेर पौरुष-गौरव, वीरत्वेर
नित्य कीर्तितृषा, शान्त हये लुटाइया
पड़े भूमे, ओई पूर्ण सौन्दर्येर काछे
पशुराज सिंह यथा सिंहवाहिनीर
भुवन-वाञ्छित अरुण चरणतले।

याने "नमालूम क्यो तुमको देखकर अकस्मात मैंने जाना है कि प्रथम प्रभात मे एक किरण से अन्धकार महासमुद्र में सृष्टी का शतदल दिशाओं मे एक मुहूर्त मे उन्मेषित होकर उठा था +++ चारों तरफ़ से देवता उँगलियों ने मानो मुझे दिखला दिया कि

तुम्हारे इस अलौकिक आलोक मे कीर्तिक्लिष्ट जीवन का पूर्ण निर्वापण है। +++ मैने सोचा तुम्हारे उस पूर्ण सौन्दर्य के सामने कितने युद्ध, कितनी हिंसाये, पुरुष का पौरुष-गौरव, वीरता की नित नई कीर्ति की प्यास शान्त होकर चरणो मे लोटने लगती है, जैसे पशुराज सिंह सिंह वाहिनी दुर्गा के भुवन-वांछित अरुण चरणों में लोटता है।"

मोहितलाल की राय मे रवीन्द्रनाथ में सौन्दर्य का यह दूसरा आदर्श है, उनके मत मे यहाँ केवल कामना नही, पुरुष का पौरुष स्तंभित हो जाता है, जैसे जीवन्मुक्ति होती है वे कहतेहै "यहाॅ किसी कर्म-प्रवृत्ति हृदय-वृत्ति का अवसर नही है, हम जिसको जीवन कहते हैं वह द्वंद और विक्षोभ शान्त हो जाता है, क्षुद्र चेतना जैसे एक वृहत्तर चेतना मे लुप्त हो जाती है, इसी का नाम जीवन का पूर्ण निर्वापण है। इस सौन्दर्यप्रीति का नाम ही *æstheticism artistic monasticism*—है

दोनों आदर्श एक हैं।

मै मोहितलाल के अपने वाक्यो तथा उदाहरणो से ही दिखलाऊँगा कि उनकी अँग्रेज़ी काव्यमर्मज्ञता ने उनको पथभ्रष्ट कर दिया है और वे उर्वशी को ठीक नही समझ पाये। मै पहिले इस बात पर आऊँगा कि क्या रवीन्द्रनाथ की उर्वशी और चित्राङ्गदा मे कोई आदर्शगत भेद है, या उनमे उतना ही प्रभेद है जितना दो यात्रियों में आदर्शगत या मौलिक भेद न होते हुए भी होना चाहिये। चित्राङ्गदा के सौन्दर्य मे मोहितलाल जीवन का पूर्ण निर्वापण देखते हैं, किन्तु मैं तो केवल एक प्रकार के जीवन (जिसमे वीरत्व की नित नई कीर्ति की प्यास वगैरह थी) उसीका निर्वापण देखता हूॅ, और एक दूसरे प्रकार के शायद हृदय के अधिकतर तड़पनयुक्त जीवन का सूत्रपात देखता हूॅ। यदि किसी नारी के रूप को देखकर अर्जुन की तरह पुरुषसिंह अपने पौरुष को भूल जाता है, अपने

जीवन के अब तक के तरीकों पर लात मारकर उस सुन्दरी रूपसी के चरणो मे लोटने को उद्यत हो जाता है, तो इसे जीवन का पूर्ण निर्वापण कैसे कहेगे। मै तो इसमे कामनामय सौन्दर्य को ही देखता हूॅ। मोहितलाल जिसको *Æstheticism* या *Artistic monasticism* कहकर चीख उठते है मै तो उसमें अत्यन्त कामनामय सौन्दर्यानुभूति ही देखता हूॅ किन्तु इसमे मै मोहितलाल को दोष नही देता, कामना-लेशहीन सौन्दर्यानुभूति मनोवैज्ञानिक दृष्टि से असंभव चीज़ है। इसलिये यदि 'उर्वशी' कविता मे रवीन्द्रनाथ कथित कल्पना से विचलित हो गये है, तो यह प्रकट करता है कि दार्शनिकता के आवेश मे कवि अपने कवि-धर्म को भूलते-भूलते नही भूलते है। यदि मोहितलाल की बात मान ली जाय तो यही प्रमाणित होगा कि सौभाग्य से कविवर अपने अन्तर की पुकार पर ही चलते है, सौन्दर्यविज्ञान की पुस्तको पर नहीं। मोहितलाल ने स्वयं ही आगे चलकर माना है "इसमें (*æstheticism*) वास्तविक जीवन और जगत के प्रति उदासीनता होती है, अतएव इसमे सृष्टि का पूर्ण सत्य नही है, यह भी सूक्ष्मतर इन्द्रियविलास या अतीन्द्रिय भाव-विलास है।"

दूसरा आदर्श केवल काल्पनिक

इससे स्पष्ट है कि कविता का यह दूसरा आदर्श अवास्तविक है, इससे जीवन का कोई सम्बन्ध नही है। यह अच्छा ही हुआ कि कविता के इस प्राणहीन संगमर्मर निर्मित आदर्श को न अपना कर रवीन्द्रनाथ ने तड़पनयुक्त सजीव आदर्श को अपनाया। इसी आदर्श की प्राणरसपुष्टता के कारण ही उर्वशी कविता नारी पर एक श्रेष्ठ कविता है। मोहितलाल ने यह जो कहा है "माता नहीं हो कन्या नही हो वधू नहीं हो" के साथ "तुम्हारे कटाक्ष के आघात से त्रिभुवन यौवन चंचल हो जाता है" इसका सामंजस्य नही है मेरी राय मे यह बात ग़लत है। उर्वशी कोई गणित का सवाल नही,

है, वह एक जीती-जागती तड़पती फड़कती चीज़ है, कवि-कल्पना में कभी ऐसी कभी वैसी मालूम होगी इसमे आश्चर्य क्या है। जिसको हम प्यार करते है उस नारी के सम्बन्ध में ऐसे भाव का आनाजाना आश्चर्यजनक नही है। कभी तो उसके कटाक्ष पर सारी पृथिवी घूमती हुई मालूम होती है, कभी वह इतने दूर की वस्तु मालूम होती है कि वह न तो माता न कन्या न वधू मालूम होती है। क्या यह बात कोई ऐसी अनहोनी है कि समालोचक मोहितलाल को मालूम नही हुई।

सौन्दर्य विज्ञन की कसौटी पर उर्वशी

मोहितलाल ने कीटस की एक पंक्ति *A thing of beauty is a joy for ever* लेकर यह दिखाया है कि "दाहिना हाथ मे सुधापात्र तथा बाये हाथ मे विषभांड लेकर इसमे विषभांड का उल्लेख विशुद्ध सौन्दर्यानुभूति मे वाधक है। फिर एक बार मै विद्वान समालोचक से सहमत नहीं हो सकता। मैं तो समझता हूं इस विषभांड की मौजूदगी ही सुधापात्र को और भी सुधामय बना देती है, यही प्रकृति का नियम है। मृत्यु के कारण ही जीवन मधुर है, विरह के भय के कारण हो मिलन प्रिय है, इत्यादि इसके कितने उदाहरण है, फिर यदि स्वर्ग रूपसी चिरयौवना उर्वशी के एक हाथ के सुधापात्र को मधुरतर बनाने के लिये कवि ने दूसरे हाथ में विषभांड की कल्पना की है तो इसमे आश्चर्य ही क्या है? फिर यह केवल कल्पना ही नही है; क्या रूप और कामना की देवी वह चाहे जिसके लिये जो नाम रखती हो वह एक हाथ मे अपने प्रेमिक के लिये 'अमी' और दूसरे मे 'हलाहल' नहीं रखती? एक हिन्दी कवि जो शायद स्विनबर्न के परदादा के परदादा के परदादा से भी आगे थे प्रिया के नयनो को अमृत, हलाहल और मद से भरे देखे है। मुझे डर है विद्वान् समालोचक कीट्स की बात *A thing of beauty is joy for ever* को ठीक ठीक नही समझे, क्या रवीन्द्रनाथ की

उर्वशी कहीं पर *joy for ever* नहीं है *joy* या आनन्द एक *subjective* चीज़ है, इसलिये प्रेमिक तथा पुजारीकी आँखो में क्या आनन्द होगा, यह साधारण नियम से बताया नही जा सकता, सिसक-सिसक कर मरने में ही यदि किसी को आनन्द मिले तो ?

उर्वशी पर एक और बात, और हम खतम कर चुके। मोहित-लाल ने कहा है कवि ने जिसको अन्धकार सागर के नीचे प्रवाल के पलॅग पर अकलंक हास्यमुख से सोते देखा है तथा यौवन मे जिसके कटाक्ष से त्रिभुवन को यौवन-चंचल होते देखा है उसी को नित्यपूर्ण और स्वयंप्रकाश सौन्दर्य के प्रतीक रूप मे कल्पना करते हुए जो प्रश्न करते है "वृन्तहीन पुष्प की तरह अपने मे आप विकसित होकर हे उर्वशी तू कब खिली ?" इससे कल्पना मे गड़-बड़ी आ गई है। मै नम्रता पूर्वक कहना चाहता हूॅ फिर समालोचक-ग़लत समझे ? याद यह रहे नित्यपूर्ण और स्वयंप्रकाश शब्द समा-लोचक के है, फिर कवि जो प्रश्न पूछते है कब खिली न कि कब पैदा हुई। कवि ने उसको कली की अवस्था मे देखा, फिर खिली अवस्था मे देखा किन्तु प्रश्न यह है कब वह खिली। मै समझता हूॅ यह एक प्रासंगिक प्रश्न है। सृष्टि मे इसी रहस्य को समझाने के लिये वैज्ञानिको ने *emergent evolution* आदि कितने ही अर्ध-वैज्ञानिक सिद्धान्त बनाये है।

अब रहा यह कि स्विनबर्न की कविता से रवीन्द्रनाथ को कहाॅ तक मसाला मिला, यह हमने पाठको के सन्मुख रख दिया, किन्तु जो कुछ भी पेश किया उसी से मालूम होता है कुछ नहीं लिया। विशेष कर जहाॅ बतलाया गया है कि

And the waves of the sea as she came

इत्यादि

का एक-दम अनुवाद है, वहाॅ तो हमे मालूम होता है

+++ मन्त्रशान्त भुजङ्गेर मतो

+++ फणा लक्ष शत

करि अवनत,

से कवीन्द्र ने कथित अनुवाद को इतना सुन्दर बना दिया है कि मूल बड़ा दुर्बल मालूम देता है।

रवीन्द्रनाथ पर एक सरसरी निगाह

अब हम सरसरी तौर पर रवीन्द्रनाथ पर दो-चार बाते और कहेगे। रवीन्द्रनाथ को लोग चाहे रहस्यवादी समझें और कहे, किन्तु उन्होने साफ साफ बारबार कहा है।

सबार उपरे मानुष सत्य ताहार उपरे नाई

"सब से बढ़कर सत्य मनुष्य है, उसके ऊपर कुछ नही है।" बारबार रावीन्द्रीय वीणा से यह वाणी झङ्कृत हुई है। रवीन्द्रनाथ की एक प्रसिद्ध कविता है "स्वर्ग से बिदाई", इसमे मनुष्य ने स्वर्ग से कहा है—

थाको स्वर्ग हास्यमुखे, करो सुधापान
देवगण ? स्वर्ग तोमादेरि सुखस्थान
मोरा परवासी। मर्त्यभूमि स्वर्ग नहे
से जे मातृभूमि—ताइ तार चक्षे बहे
अश्रु जलधारा .

याने "हे स्वर्ग तुम हास्यमुख से रहो, हे देवताओ सुधापान करो। स्वर्ग तुम लोगो के सुख का स्थान है, हम तो यहाँ प्रवासी-मात्र है। मर्त्यभूमि स्वर्ग तो नही है किन्तु मातृभूमि है, तभी तो उसकी आँखों मे अश्रुजल की धारा बहती है।" इस स्वर्गविमुखता के होते हुए भी रवीन्द्रनाथ का मनुष्य यहाँ लौटकर एक स्वर्गीय स्वप्न में ही विभोर रहता है, जीवन की कठिन वास्तविकताओ से उसका जैसे कोई सम्बन्ध नही। वह यहाँ भी कामना करता है "यदि धरातल मे

दीनतम घर में मेरी प्रेयसी जन्म ले, किसी नदी के किनारे गाँव मे एक पीपल के पेड़ के नीचे, वह बालिका फिर अपने वक्ष मे मेरे लिये सुधा का भंडार संचित कर रक्खेगी" इसी तरह की और बाते। इसीसे रवीन्द्र-साहित्य आधुनिक होने पर भी सच्चे मानों मे पूर्ण क्रान्तिकारी नही है। फिर भी रवीन्द्रनाथ अछूतों के दुःख से विक्षुब्ध मालूम होते है, वे जाति से कहते हैं इसको दूर करो "नही तो अपमान में उनको सब के समान होना पडेगा, उन्हे दूर रखकर तुमने मनुष्य के हृदय के देवता की अवहेलना की है।" "लकड़हारा जहाँ लकड़ी चीरता है, किसान जहाँ हल जोतता है" वहाँ पर रवीन्द्रनाथ के भगवान भी हैं; किन्तु इतनी सहानुभूति का ऐश्वर्य होने पर भी कवीन्द्र कभी भी इन दुखो की तह मे जो एकदेशीय तथा वर्गीय समाजव्यवस्था है उस तक नहीं पहुँच पाते।

कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ के सम्पादन मे "बगला-काव्य परिचय" नामक एक पुस्तक प्रकाशित हुई है, इसमे कवीन्द्र ने अपनी १७ कवितायें दी हैं, किन्तु मेरी राय मे इसमे से एक भी कविता रहस्य-वादी नहीं है इसी से यह निष्कर्ष तो नही निकलना चाहिये कि वे अपनी उन कविताओं को जो रहस्यवादी (*mystic*) हैं, उनसे वे अपनी दूसरी कविताओ को अच्छी नही समझते, किन्तु इससे यह अर्थ तो निकाला ही जा सकता है कि अपनी कविताओं में कवित दृष्टि से वे अपनी रहस्यवादी कविताओ को विशेष महत्त्व नहीं देने के लिये तैयार हैं। सौभाग्य से बँगला साहित्य मे गीतांजलि ही रवीन्द्रनाथ का श्रेष्ठ दान नहीं है। मोहितलाल ने लिखा है और मैं इससे सहमत हूँ कि रवीन्द्रनाथ की विशेषता यह है कि उन्होंने प्राच्य भाव-साधना और प्रतीच्य रूप-साधना का सुन्दर समन्वय किया है। इसी कारण प्राच्य के रहस्यवाद ने उनके हाथो में एक नया ही रूप धारण किया है। एक विद्वान् समालोचक का तो यह कहना है कि रहस्यवादी कवितायें (*mystic poems*) रवीन्द्रनाथ की

प्रतिभा का श्रेष्ठ दान नहीं है।

कुछ भी हो यूरोप मे इन रहस्यवादी कविताओं की ही धूम रही, रवीन्द्र-प्रतिभा मे चूंकि प्राच्य भावपरायणता का प्रतीच्य रूपब्याकुलता का समन्वय है इसलिये दोनों प्रकार के पाठकों को उनकी कविता मे अभिनवत्व मिलता है।

एक जीवन में कई जन्म और कई जीवन

मै पहिले ही कह चुका कि रवीन्द्रनाथ को किसी वाद के विशेषण मे लाकर यह कहने की चेष्टा करना कि इसी वाद के वादी है, ग़लत होगा। पाश्चात्य मे टमास मान की तरह व्यक्ति है जो कई बार कायापलट कर दूसरे ही कलाकार हो चुके है, उन्होंने जैसे एक ही जीवन मे कई जन्म पाये, किन्तु रवीन्द्रनाथ इसके विपरीत एक दूसरे ही तरह के जीव है। वे एक साथ कई जीवन जीते है। यदि सन् और तारीख से देखा जाय तो मालूम इस बात की सत्यता मालूम होगी। एक ही समय में वे कई तरह कविता लिखते हैं। कही तो वे बिलकुल फ्रायडवादी हैं तो कही रहस्यवादी, कहीं भावुक है तो कही विचार का नूपुर छमछम बज रहा है। यह एक न्यारी ही दुनिया है।

हिन्दी जगत में रवीन्द्रनाथ को लोग मुख्यत: अंग्रेज़ी के ज़रिये से जानते हैं, इसलिये वे हिन्दी जगत में केवल रहस्यवादी समझे जाते हैं। बात यह है वे अंग्रेज़ी गीतांजलि को ही पढ़ते हैं जिसके कारण उन्हे नोबुल पुरस्कार मिला, दूसरी बहुत सी पुस्तकों को वे पढ़ने का कष्ट नही उठाते। यदि वे गीतांजलि के अतिरिक्त "सोनार तरी" "बलाका" आदि पढ़े तो उनकी यह धारणा जाती रहे।

आधुनिकों के आधुनिक किन्तु

अन्त में हम रवीन्द्रनाथ की 'एबार फिराओ मोरे' (अब मुझे

लौटाओ) कविता का अनुवाद देकर इस दौर को समाप्त करते हैं। यह कविता एक नई ही वाणी को लेकर शंखनाद कर रही है, जिसमे वे कही कही आधुनिको के अधुनिक मालूम होते हैं। अर्ध-शताब्दी तक साहित्यिक क्षितिज मे बराबर रहने पर भी आज भी रवीन्द्रनाथ अपनी नवीनता को कायम रख सके हैं इसका कारण यह है कि उनका ग्रहणशील (*receptise*) मन हमेशा नये युग को अपना लेता है। सब से मुश्किल होता है भाषारीति मे परिवर्तन, किन्तु वे इसमें भी पिछड़े नही रहे। उन्होने बुढ़ाये मे बॅगला की साधु भाषा को छोड़कर आम बोलचाल की भाषा अपनाई, केवल यही नही कि उन्होने उसको इस्तेमाल किया बल्कि उन्होने उसका पक्ष लेकर बड़े-ज़ोरो की वकालत की। कई समालोचक को इस बात पर बड़ा आश्चर्य है क्योकि उनकी पहिले की सारी रचना साधु भाषा मे है, और "रवीन्द्रनाथ का रवीन्द्रनाथत्व उसी भाषा में है।" पहिले ही मै कह चुका कि रवीन्द्रनाथ मुख्यतः भद्रलोक श्रेणी के कवि हैं, संभव है जब आम-लोगो का साहित्य हो तो उसमे रवीन्द्रनाथ का स्थान यह न रहे, किन्तु बॅगला भाषा को जो सौष्ठव तथा नमनीयता उन्होंने दी है वह रवीन्द्र-विरोधी से रवीन्द्रविरोधी कवि तथा साहित्यिक की अनुकरणीय होगी। बॅगला भाषा का कोई भी लेखक इस ऋण से उऋण नही हो सकता।

एबार फिराओ मोरे

इस संसार मे जब सभी हर समय सैकड़ो काम में लगे हुए है, उस समय हे कवि तैने दुपहर की धूप में एक पेड़ के नीचे बैठकर दूर जंगलो की गंध बहाकर लाने-वाली हवा मे केवल बाँसुरी ही बजाई। अरे आज तू उठ, कही आग लगी है। सुन, किसी का शंख विश्ववासी को जगाने के लिये बज रहा है। कही से रोने की आवाज़ से सारा आकाश गूँज उठा है। किसी अन्धकार कारागार में बन्धन से जर्जर कोई अनाथिनी सहायता माँग रही है। दुर्बल की

छाती पर चढ़कर मोटाताज़ा अपमान लाखों मुँह से रक्त पी रहा है स्वार्थ से उद्यत अविचार वेदना को परिहास कर रहा है।

वे जो लाखों मौन होकर सिर नीचा किये हुए खड़े हैं उनके कुम्हलाये हुए चेहरे पर सैकड़ों सदियों की वेदना की करुण कहानी है। जितना ही उनके सिर पर बोझ बढ़ता जाता है वे उसको उठा कर चलते रहते हैं जब तक जान रहती है, फिर मर जाने पर उसके अपने बच्चों के लिये छोड़ जाते है, न तो भाग्य को इसके लिये कोसते हैं न ईश्वर की ही निन्दा करते हैं, यहाँ तक कि मनुष्य को भी दोष नही देते, अभिमान नही जानते, केवल बस दो दाने अन्न खोट कर किसी तरह कष्टक्लिष्ट प्राण कायम रख सकते है। जब उस अन्न को भी कोई छीनना चाहता है, तथा गर्व से अन्ध निष्ठुर अत्याचार से उसके हृदय पर चोट पहुँचाता है तो वे यह भी नही जानते कि किसके द्वार पर न्यायविचार की आशा से खड़े हो, दरिद्र के भगवान् को बस एकबार पुकार कर वह चुपचाप मर जाता है।

इन सब म्लान तथा मूढ़ मुखों मे भाषा देनी पड़ेगी, इन श्रान्त शुष्क भग्न हृदयों मे आशा प्रतिध्वनित करनी पड़ेगी, पुकार कर इन्हें कहना पड़ेगा—

"अरे एकबार सिर उठाकर खड़े तो हो जाओ फिर देखोगे कि जिनके डर से तुम डर रहे हो वह तुम से भी डरपोक हैं, जभी तुम जाग उठोगे वह भागकर खड़ा हो जायगा। जभी तुम उसके सामने खड़े हो गये तभी वह रास्ते के कुत्ते की तरह भय तथा संकोच से विलीन हो जायगा। ईश्वर उस पर विमुख है, उसका कोई सहायक नहीं, बस मुँह से वह बड़ी-बड़ी बातें छाँटता है, वह है, वह मन ही मन अपनी हीनता को जानता है।"

कवि यदि तुममे प्राण है तो उठो, उसे साथ लेकर चलो और उसका आज दान करो। इस संसार मे बड़े ही दुःख हैं, बड़ी व्यथायें

है, बड़ी ग़रीबी है, हाय यह तो बड़ा शून्य है, बड़ा छोटा है, बड़ा अन्धकार है। अन्न चाहिये, प्राण चाहिये, रोशनी चाहिये, खुली हवा चाहिये, शक्ति चाहिये, स्वास्थ्य चाहिये, आनन्द से उज्ज्वल आयु चाहिये और साहस से विस्तृत हृदय चाहिये। हे कवि इस दीनता में एकबार स्वर्ग से विश्वास तो ले आओ।

हे मेरी रंगीन रंगमयी कल्पने अब मुझे लौटाकर फिर संसार के किनारे ले चलो, अब मुझे हवा हवा में लहरों-लहरों में तथा मोहिनी माया मे न भटकाओ। निर्जन विषाद घन अन्तर की निकुंज-छाया में मुझे बैठाकर न रक्खो। दिन जाता है सन्ध्या हो आती है, उदास हवा में वन साँस लेकर रो पड़ता है। ऐसे समय मे मै निकल पड़ा जनता के बीच। जब मै जगत मे आया था तो न मालूम किस माता ने मुझे यह खेलने की वंशी दी थी। उसीको बजाते-बजाते मै अपने सुर में ही इतना मुग्ध हो गया कि मै संसार-सीमा के बाहर चला-सा गया और दिन चले गये रातें चली गईं। उस वंशी में मैंने सुर ज़रूर सीखा है, किन्तु यदि मै उस सुर की सहायता से इस गीतशून्य अवसादपुर को ध्वनित कर सकूँ, यदि मृत्युंजयी आशा के संगीत से कर्महीन जीवन के एक कोने को यदि एक मुहूर्त के लिये ही तरंगित कर सकूँ, दुःख यदि उसकी भाषा पा ले, अन्तर की गहरी प्यास यदि स्वर्ग के अमृत के लिये जग उठे तभी मेरा गान धन्य होगा, तभी सैकड़ो असन्तोष महागीत मे निर्माण प्राप्त होगा।

कहो आज क्या गाओगे, क्या सुनाओगे? कहो अपना दुःख झूठा है अपना छोटा सुख भी, जो व्यक्ति स्वार्थमग्न होकर बड़े जगत से दूर है, उसने कभी जीना नही सीखा। विश्वजीवन की महान् लहरों पर नाचते-नाचते हमे निर्भय होकर दौड़ना पड़ेगा, सत्य को ध्रुवतारा बनाकर तथा मृत्यु को न डरकर। दोदिन के आँसू सिर पर गिरेंगे, उसीमें हम उसके अभिसार में चलेंगे जिसको मैंने जन्म-

जन्म के लिये जीवनसर्वस्वधन सौंप दिया। वह कौन है? नहीं मालूम फिर भी मालूम है उसीके लिये रात के अँधेरे मे यात्री मनुष्य युग से युगान्तर की ओर आँधी मे वज्रपात मे जा रहा है, अपने अन्दर के दीये को सावधानी से पकड़कर सिर्फ मालूम है, जिसने कानों से उसकी पुकार सुनी है वह निडर होकर संकट के भँवर मे कूद पड़ा हैं उसने दुनिया पर लात मार दी है तथा अत्याचारों को सीना खोलकर ग्रहण किया है। मृत्यु के गर्जन को उसने संगीत की तरह सुना है। अग्नि ने उसको जलाया है, शूल ने उसको छेदा है, कुठार ने उसे छिन्न किया है, उसने अपनी सब प्रियवस्तु को इन्धन बनाकर बिना कातरता के ही होमाग्नि जलाई है। हृत्पिंड रूपी रक्तपद्म को उसने छिन्न कर चढ़ा दिया है और अन्तिम बार सभक्ति पूजा की है और फिर भी मरकर अपने को कृतार्थ समझा है।

मैंने सुना है उसीके लिये राजकुमार ने फटी कँथड़ी पहिन ली है और विषय विरक्त रास्ते का फ़कीर हो गया है। मैंने सुना है उसी लक्ष्य के लिये महाप्राण पल-पल मे जला है, उसके चरणों मे कुशांकुर घुस गये है, उसे मूढ़ विज्ञपुरुषो ने अविश्वास किया है प्रियजनों ने हँसी उड़ाई है, फिर भी उसने नीरव करुण नेत्रों से सभी को क्षमा कर दिया है, उसके अन्दर वह अनुपम सुन्दर लक्ष्य मौजूद था। उसीके लिये मानी ने मान तज दिया, धनी ने धन सौंपा, वीर ने प्राण दे दिये है+ + + ++ + + + + ”

Idealist के नाते कवि की सीमा

मैंने विशेषकर इस कविता को इसलिये उद्धृत किया कि इसमें कवि के कइ तरह की कविताओं के नमूने एक साथ मिल जाते है। इसमे एक देखने की बात है कि कवि अपने को सम्बोधितकर एक क्रान्तिकारी की तरह शुरू करते है, किन्तु एक *idealist* कवि के नाते वे जल्दी ही *concrete* या निर्दिष्ट चीजों को छोड़कर अनिर्दिष्ट या *abstract* मे कूद पड़ते है। हमे अगले दौर में भी रवीन्द्रनाथ पर बात करने का मौक़ा मिलेगा।

३

प्राक—अति—आधुनिक युग

बॅगला साहित्य मे रवीन्द्रनाथ का युग अभी खतम नही हुआ है, इसलिये रवीन्द्रनाथ के विषय मे लिखने के बाद क्या लिखा जाय यह ज़रा विचार्य है। इसमे सन्देह नही कि कुछ कवि रवीन्द्रनाथ के समसामयिको में ऐसे हुए है जिनको हम रवीन्द्रनाथ की प्रतिध्वनि नही कह सकते। हम पहिले ऐसे तीन कवियों का उल्लेख कर चुके है, एक तो अक्षयकुमार बड़ाल, दूसरे सुरेन्द्रनाथ मजुमदार, तीसरे देवेन्द्रनाथ सेन। हम उनकी कविता का उदाहरण भी दे चुके हैं, किन्तु अब हम कुछ ऐसे कवियो का उल्लेख करेंगे जिनको हम काल की दृष्टि से प्राक-अति आधुनिक युग के कवि कहेंगे। सच बात तो यह है वे रवीन्द्रनाथ के समसामयिक है, किन्तु उनका कार्यक्षेत्र मुख्यतः १९१४-१८ के महायुद्ध के पहिले के समय मे ही रहा।

द्विजेन्द्रलाल राय

ऐसे कवियों में द्विजेन्द्रलाल राय का नाम सबसे प्रमुख है। एक समय था जब लोग उन्हे रवीन्द्रनाथ के समकक्ष कवि समझते थे, इसमे सन्देह नही वे एक उच्च-प्रतिभाशाली कवि तथा नाटक-कार थे। नाटक मे तो कला की तथा निस्पृह सौन्दर्य सृष्टि की दृष्टि से न हो भावुकता की दृष्टि से वे अक्सर रवीन्द्रनाथ के आगे निकल रहे है। आज द्विजेन्द्रलाल की भाषाशैली को अपनाकर चलनेवाले बॅगला साहित्य मे बहुत कम होगे, किन्तु रवीन्द्रनाथ के प्रभाव से मुक्त शैलीकारो (*stylists*) मे वे ही कदाचित् सबसे प्रमुख है। सच बात तो यह है रवीन्द्रनाथ की विश्वविस्तृत विपुल ख्याति के सामने द्विजेन्द्रलाल अच्छी तरह चमक नही पाये, दूसरी बात दुर्भाग्य की जो द्विजेन्द्रलाल की हुई वह यह थी कि वे आपेक्षिक रूप से

कम उम्र में ही उठ गये जिससे कि वे साहित्य में एक जीवित शक्ति नहीं रह सके। मुझे डर है द्विजेन्द्रलाल का मूल्य ठीक तरह से कूता नहीं गया है, शायद जब रवीन्द्र-युग थिरा जावे तो उनका असली मूल्य कूता जाय। मेरी राय मे यदि रवीन्द्रनाथ बॅगला मे पैदा न होते तो द्विजेन्द्रलाल बॅगला के सबसे बड़े कवि माने जाते, किन्तु उनकी कविता तथा गीत मुख्यत: उनके नाटको मे बिखरे हैं। द्विजेन्द्रलाल की हॅसी के गाने मशहूर है। हम उनकी और तरह की कविता उदाहरण रूप मे पेश न कर 'नन्दलाल' नामक एक हॅसी का गाना अनुवाद के रूप मे पेश करेंगे। यह उस ज़माने के और कुछ हद तक इस ज़माने के बंगाली मध्यवित्त श्रेणि के बाबू का सुन्दर चित्र है। मजे की बात इस सम्बन्ध मे यह है कि द्विजेन्द्रलाल बंकिमचन्द्र की तरह एक डिपटी मैजिस्ट्रेट थे, और इन्हीं दोनों लेखको की रचनाओ से बंगाल ने स्वदेशभक्ति सीखी?

नन्दलाल

नन्दलाल ने एक दफे एक भीषण प्रण कर ही डाला कि जैसे भी हो वह स्वदेश के लिये अपना प्राण रख देगा। सब ने कहा—हॉ-हॉ, हाँ-हाँ, नन्दलाल यह तुम क्या करते हो?

नन्दलाल ने कहा—तो क्या हम हमेशा बैठे ही रहें, भला मैं न करूँ तो इस देश का उद्धार कौन करेगा?

तब सब ने कहा—वाह रे नन्दलाल, वाह, वाह, वाह!

नन्द का भाई हैज़े से मरने लगा, उसे कोई देखनेवाला नही था। सब ने कहा—जाओ न, ज़रा भाई की सेवा तो करो....

नन्दलाल ने कहा—खैर भाई के लिये जान देना है तो मैं दे सकता हूं, लेकिन ऐसा अगर मैने किया तो इस अभागे देश का क्या होगा? इसलिये चारों तरफ सोचकर मैने देखा कि मेरा जीना बहुत ही ज़रूरी है।

तब सब ने कहा—अहा हा हा हा ! तुमने बावन रत्ती पाव तोले ठीक बात कही, ज़रूर ।

नन्द ने एक दफे एक अखबार निकाला, उसने गद्य तथा पद्य में सब को गालियाँ देकर सब की नाक में दम कर दिया। चारों तरफ नन्द की धूम हो गई, नन्द मेहनत के मारे लकड़ी हो गया। वह जै गुना सोता था उसका दसगुना खाता था, क्या करता वह पूड़ी, मिठाई और पक्वानों के दोने पर दोने उड़ाने लगा। नन्द ने एक बार अपने अखबार में एक साहब को गालियाँ दीं। साहब ने आकर उसका गला पकड़ लिया तो वह चीं-चीं कर बोला—अजी यह क्या करते हो, कहीं मैं इस गला दबाने से मर गया तो इस देश का क्या होगा ? फिर जितने गज़ तक कहो उतने गज़ तक नाक ज़मीन पर रगड़ने के लिये या जो कहो सो करने के लिये तैयार हूँ ।

तब सबने कहा— अरे वाह अरे वाह वाह !

नन्द फिर घर से बाहर नहीं जाता था, न मालूम कहाँ कब क्या हो जाय। गाड़ी पर नहीं चढ़ता था, न मालूम कब उलट जाय, नाव में भी नहीं चढ़ता था क्योंकि न मालूम हर साल कितनी डूबती हैं, रेल मे लड़ने का भय था, फिर पैदल चलने मे साँप, कुत्ते तथा गाड़ी के नीचे दब जाने का डर था, इसलिये नन्दलाल अब लेटे ही लेटे जीने लगा। सबने कहा—अरे वाह ! अरे वाह ! नन्दलाल, हमेशा जीते रहो।

द्विजेन्द्रलाल ने अंग्रेज़ी में भी कुछ सुन्दर कवितायें लिखी हैं, उनमे और रवीन्द्रनाथ मे बराबर साहित्यक विषयों को लेकर जो विवाद हुए हैं वे पढ़ने की चीज़ें हैं। रवीन्द्रनाथ को एक तरफ़ विपिनचन्द्र पाल ऐसे धुरन्धर विद्वान् तथा द्विजेन्द्रलाल ऐसे प्रतिभाशाली कवि से निपटना पड़ता था, रवीन्द्रनाथ को इस वादविवाद में असुविधा यह थी कि रवीन्द्रनाथ ब्राह्म सम्प्रदाय के होने के

कारण जनता उनकी 'प्रचार कार्यमूलक' रचनाओं के विरुद्ध सहज ही हो जाती थी। द्विजेन्द्रलाल ने 'भारतवर्ष' नामक मासिकपत्र चलाया जो अब तक सफलतापूर्वक चल रहा है। कवि द्विजेन्द्रलाल ने क़रीब-क़रीब उन सभी क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा को दौड़ाया है जिनमें रवीन्द्रनाथ की कीर्ति है, हाँ, उन्होने नाटक ही लिखे, उपन्यास न लिखे।

सत्येन्द्रनाथ दत्त

सत्येन्द्रनाथ दत्त की प्रतिभा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें कुछ भी कृत्रिमता नहीं है, उनकी कविता कभी अलसाती हुई चाल से कभी द्रुत, कभी गरजती, कभी बरसती, कभी तड़पती हुई चली जाती है। रेड इण्डियनों की लोरी, चीनी कवि लो तु की कविता, जेनरल नोगी की एक आह; बल्कान, आईसलैंड की कविता को उन्होंने बँगला मे रूपान्तर कर रक्खा है, किन्तु कवि यदि न बतावे तो किसी जगह मालूम भी न हो कि यह जो हम पढ़ रहे हैं और पढ़ते-पढ़ते मस्त होकर झूमने लगते हैं, क्रोध से बलबला उठते है या विषाद से मुरझा जाते हैं यह कोई अनुवाद है। विदेशी कविताओं को बँगला लिबास पहिनाने मे सबसे सफल वे ही रहे। दुःख की बात है कि वे भी अकाल-मृत्यु के शिकार रहे। उनकी प्रतिभा कविताओं के अनुवाद के क्षेत्र में अद्वितीय होने पर भी वे केवल अनुवादक ही नहीं रहे। उनकी मौलिक कविताओं की संख्या भी बहुत है। छन्द और भाषा उनके लिये इतनी अनायास थी कि उनकी कविता सीधे पाठक के कानों में पैठते ही हृदय में पैठ जाती है। बंगाली आत्मा के साथ उनकी इतनी तादात्म्यता थी कि इस क्षेत्र में रवीन्द्रनाथ भी उनसे कहीं आगे बढ़ पाये है ऐसा नही कहा जा सकता। सत्येन्द्रनाथ दत्त की मृत्यु पर रवीन्द्र ने एक बहुत ही सुन्दर कविता लिखकर उनकी असामान्य प्रतिभा को दाद दिया है। उन्होंने लिखा—

वर्षार नवीन मेघ एलो धरणीर पूर्व द्वारे
बाजाइलो वज्रभेरी। हे कवि, दिवे ना साड़ा तारे
तोमार नवीन छन्दे ? आजिकार काजरी-गाथाय
झुलनेर दोला लागे डाले डाले पाताय पाताय
वर्षे वर्षे ए दोलाय दितो ताल तोमार जा वाणी
विद्युत-नाचन-गाने से आजि ललाटे कर हानि
विधवार वेशे केनो नि:शब्दे लुटाय धूलिपरे ?

"वर्षा के नये बादल पृथिवी के पूर्व द्वार मे आ गये, आकर उन्होंने वज्रभेरी बजाई। हे कवि तुम अपने नवीन छन्दो से उसको उत्तर न दोगे ? आज की कजली गाथाओ मे पत्ते-पत्ते में तथा डालियो में झूलन का प्रभाव है, प्रति वर्ष इस झूलने को तुम्हारी जो वाणी विद्युत-नृत्य-गान से ताल देनी थी वह आज विधवा के वेश में सिर धुनती हुई चुपचाप पड़ी हुई धूल पर क्यो लोट रही है ?"

केवल यही नहीं कवीन्द्र ने लिखा है सत्येद्रनाथ वंग भारती की वीणा में एक नवीन ही तार पहिनाने आये थे। भाषा, छन्द तथा नवीनता होते हुए भी सत्येन्द्रनाथ दत्त रवीन्द्रनाथ या द्विजेन्द्रलाल की तरह एक विश्व कवि इसलिये नही हो सके क्योकि उनकी कविता में कोई दार्शनिकता की गहराई नहीं है। आज के युग की अच्छी कविता केवल सुललित भाषा या सावलील छन्द की बदौलत ही नहीं बन सकती, उसमें जीवन की सैकड़ों पहेलियों तथा समस्याओं पर रोशनी होनी चाहिये, कविता के जादू से ऐसा मालूम देना चाहिये जैसे उनका हल पा लिया जिसकी टोह थी। इस प्रकार की बातें सत्येन्द्रनाथ की बातों मे नहीं हैं यद्यपि जैसा कि मैं कह चुका भाषा और छन्द उनके लिये वैसे ही अनायासलब्ध है जैसे मोर के लिये रंग की विचित्रता ।

यदि उनकी अकाल-मृत्यु न होती तो शायद उनकी प्रतिभापूर्ण

रूप से विकसित होती, और वे हमे एक विराटतर रूप मे नज़र आते, उनकी एक छोटी-सी कविता का कुछ मूल, और पूरा अनुवाद देकर हम इस प्रसंग को खतम करते है

चम्पा

आमारे फुटिते होलो वसन्तेर अन्तिम निश्वासे
विषराण जखन विश्व निर्मम ग्रीष्मेर पदानत
रुद्र तपस्यार वने आध-त्रासे आधेक उल्लासे
एकाकी आसिते होलो—साहसिका अप्सरार मतो ।

इत्यादि

"जब वसन्त की अन्तिम सॉस चल रही थी तब मुझे पैदा होना पड़ा, उस समय विश्व निर्मम ग्रीष्म का पदानत था । साहसिका अप्सरा की तरह रुद्र तपस्या के वन मे हमे आधे त्रास में तथा आधे उल्लास में आना पड़ा । शोषण-क्लिष्ट वन एकबार चर्चरा उठा, उदास कुंज मे क्लान्त कोकिल का स्वर एकबार सुनाई पड़ा, ऐसे समय मे मैने जन्म-यवनिका प्रान्त मे अपने नये सुकुमार नेत्रों को खोलकर जलस्थल को देखा तो पाया कि वे शून्य, शुष्क, विह्वल, जर्जर हैं। फिर भी विश्वास के वृन्त पर कॅपता हुआ चम्पा मैं निकल ही आया। कड़ी से कड़ी धूप मे मै नही गिरूँगा, भयंकर शराब की तरह जो रौद्र है जिसकी गर्मी से विश्व तड़पकर रह जाता है मै उसे विधाता के आशीर्वाद से आसानी से पी जाता हूँ । मै धीरे से उषा का आतप्र कर पकड़कर निकल आया, देह मे मूर्छा आती है, मन मे मोह-सा छा जाता है, हर मुहूर्त यही अनुभव करता हूँ । फिर भी सूर्य की विभूति से मेरा सलोनापन ही बढ़ता है । इसलिये मै दिन के देवता को नमस्कार करता हूँ । मैं चम्पा हूँ, सूर्य का सौरभ ही तो हूँ ।"

सत्येन्द्रनाथ की इस कविता के अर्थ को यदि हम चम्पा नामक प्रसिद्ध पुष्प की जन्मकथा तक ही सीमित रक्खें तो यह एक मामूली कविता ही रहेगी, इसकी भाषा, कल्पना तथा शैली की हम चाहे कितनी भी प्रशंसा करें, किन्तु नहीं यही सब कुछ नहीं। "आधुनिक काव्यसाहित्य की एक धारा मनुष्य तथा प्रकृति को *allegorical*, *symbolical* और *mystical* दिशा से पकड़ने की चेष्टा है। इस धारा के प्रवर्तक वर्ड्सवर्थ तथा शैली हैं। *Allegorical*, *symbolical* तथा *mystical*, इनको ठीक-ठीक हिन्दी में समझाना मुश्किल है, फिर भी हम व्याख्या से इनका अर्थ स्पष्ट करने की चेष्टा करेंगे। पहिली बात तो यह है कि *allegory* भी रूपक है और *symbol* भी रूपक है किन्तु दोनों में यथेष्ट प्रभेद है। *Allegorical* श्रेणी के रूपक में एक साथ दो चीजें रहती हैं, एक तो बाहर जो कुछ स्थूल रूप से कहा जा रहा है वह, और दूसरी वह जिन बातों या भावों के वे रूपक हैं। स्थूल कहानी के रूप में भी हम उसका मज़ा उठाते हैं और जो कहानी आड़ में चल रही है उसका भी हम मज़ा उठाते हैं। जैसे स्पेंसर की *Faerie Queen* या द्विजेन्द्रलाल राय का स्वप्नप्रयाण काव्य *Allegory* के उदाहरण हैं। *Strindberg* का *Lucky Pair* भी एक ऐसा दोमुहा रूपक है। *Symbolical* रूपक नाट्य या काव्य में यह दोनों धारा रहने पर भी वहाँ वास्तव में स्थूल घटना को कोई प्रमुखता प्राप्त नहीं है, जो इस स्थूल घटना से परे दूसरी चीज़ है वही मुख्य है। जैसे रवीन्द्रनाथ का "डाकखाना" है, इसमे डाकखाना, डाकिया, मुखिया कोई सार्थकता नहीं रखते, इनके परे जो चीजे है वे ही इनमे मुख्य है।

इस पर यदि हम *allegorical* और *symbolical* का हिन्दी प्रतिशब्द करना चाहें तो हमे वस्तुरसप्रधान रूपक और भावरसप्रधान रूपक कहना पड़ेगा। प्राक-महायुद्ध (१६१४-१८) युग में यूरोपीय साहित्य मे भावरसप्रधान रूपक की प्रधानता थी। मेटरलिङ्क,

ईटस (*Yeats*) के काव्य, इसी श्रेणी मे आते हैं" सत्येन्द्रनाथ की इस 'चम्पा' कविता को हम जब रूपरसप्रधान रूपक के रूप मे लेगे तभी इसमें एक दूसरा ही आनन्द दिखलाई पड़ेगा। अजितकुमार चक्रवर्ती ने सत्येन्द्रनाथ के सम्बन्ध मे फ्रेञ्च कवि *Paul Verlaine* के सम्बन्ध मे जो कहा है कि *he paints with sound* वे ध्वनि से चित्र खीचते हैं उसीको दुहराया है यह ठीक ही है, सचमुच उनको छन्द तथा भाषा पर अद्भुत अधिकार था। "वर्लेन की तरह उनके छन्दों के स्पन्दन मे अरूप जगत का स्पन्दन मानो पकड़ा गया है।"+

रवीन्द्रनाथ की कविताओं का बहुत कुछ अनुवाद हो सकता है, किन्तु सत्येन्द्रनाथ की कविता का अनुवाद होना क़रीब क़रीब असंभव है। ऐसे अबॅगाली पाठक जो बॅगला भाषा की आत्मा तक नही पहुँचे है वे उनकी कविता को समझ नहीं सकते।

इन्दिरा देवी और प्रियम्चदा देवी

इन्दिरा देवी तथा प्रियम्चदा देवी ने भी कुछ कवितायें लिखी हैं, किन्तु इन पर रवीन्द्रनाथ का प्रभाव इतना स्पष्ट है कि मालूम होता है हम रवीन्द्रनाथ को ही पढ़ रहे है। इन्दिरा देवी की निम्नलिखित कविता भाव तथा भाषा में बिल्कुल रवीन्द्रनाथ की ही मालूम होती है। हम मूल का केवल एक *Stanza* ही उद्धृत करते हैं, जिन पाठकों ने रवीन्द्र काव्य का मूल में आस्वादन किया है वे इसको देखकर धोखे मे आ जायेगे।

हासिखेलार अभिनये अश्रुजले ढाकि
भेबेछिलाम एम्नि कोरे तोमाय देबो फाकि
बुके आमार जे सुर बाजे, गुञ्जरे जा मर्ममाझे

+देखो श्री अजतिकुमार चक्रावर्ती प्रवासी, कार्तिक १३२५।

भेबेछिलाम सुखेर साजे राखबो तारे ढाकि।
हासिखेलार मिथ्याछले तोमाय दिये फाँकि।

"हँसीखेल के अभिनय मे अश्रुजल ढककर मैंने सोचा था इसी प्रकार तुम्हे धोखा दे दूँगी। मैंने सोचा था कि मेरे हृदय मे जो सुर बजता है तथा मर्मस्थल मे जो कुछ गूँजता है उसे सुख के लिबास मे ढक रक्खूँगी हँसी-खेल के अभिनय मे तुम्हे धोखा देकर"

"प्रभात जब दुपहर मे परिणत हो गया, तप्त वायु पैरो मे अग्निकणा की तरह लैगी, देह जब थकावट के मारे मिट्टी से छू-सी जाने लगी, आँखो मे जितने ही आँसू झरते थे और मै उन्हें गोपन करती थी, तभी तुमने मुझे गोद की लड़की की तरह गोद की ओर खीच लिया।"

"मैंने तो तुमसे नही पूछा कहाँ मेरा स्थान है, मैंने तुम्हारे पैरों पर आँसुओ की बाढ़ तो नही ला दी थी। बीरान मग मे मैंने अपनी व्यथा निवेदनकर तुमसे सहायता तो नही माँगी थी, फिर भी तुमने कैसे कान डालकर मेरे हृदय की गहन बातो को तथा गोपन अभिमान को सुन लिया?"

"तुमने कैसे मेरी धोखेबाज़ी का पता पा लिया केवल यही बात मैंने तुमसे अबतक नहीं सुनी। न मालूम कब कौन-सा सुराग पाकर तुम्हारी हँसी की बाढ़ ने आकर मुझे हँसकर बहा लिया और इस प्रकार मेरी दुबिधा मिट गई। कैसे तुमने मेरी प्रतारणा पकड़ ली।"

प्रियम्वदा देवी की भी एक छोटी-सी कविता नीचे दी जाती है

आशातीत

तोमारे पारि न धरिते, पारि ना धरिते
मनेते मिशाये आपना करिते
ओरे आकाशेर आलो,

तोमाय पारि ना धरिते, पारिना धरिते
जतोई बासि ना भालो।
तोमाय पारि ना बॉधिते, षरि ना बाँधिते
नित्य नवीन छन्दे गॉथिते
ओरे मोर भालोबासा,
तोमाय पारि बाँधिते, भावे रूप दिते
तेमोन नाहिको भाषा

"हे आकाश की रोशनी मैं तुम्हें पकड़ नहीं पाती, पकड़ नहीं पाती, मन मे मिलाकर अपना नही पाती। तुमको पकड़ नहीं पाती, पकड़ नहीं पाती चाहे जितना भी प्यार करूँ।"

"तुमको मै बॉध नही पाती, बॉध नही पाती-नित्य नबीन छन्दों मे गूथ नही पाती, हे मेरे प्यार ? तुमको मै बाँध नहीं पाती, भाव को हाय रूप नही दे पाती, वैसी भाषा ही नही है।"

इन दोनो कवयित्रियों मे से इन्दिरा देवी अकाल-मृत्यु से मर गई।

यतीन्द्रमोहन बागची

यतीन्द्र मोहन बागची रवीन्द्रनाथ के सफल शिष्यों मे थे, वे उनके शिष्य ही रहे, किसी भी तरीके से अपने लिये स्वतन्त्र मार्ग का निर्माण नही कर पाये। भाषा पर उनका भी इतना अधिकार था कि उनके सम्बन्ध मे भी सत्येन्द्रनाथ की तरह *He paints with sound* कहा जा सकता है, हॉ छन्द के मामले मे वे सत्येन्द्र-नाथ से निकृष्ट रहे। उनकी कविताओ मे भी कुछ रूपकयुक्त हैं, हम नीचे खेया-डिङि नामक एक कविता उद्धृत करते है, पाठक इसकी सुललित भाषा को देखें, रवीन्द्रनाथ की भाषा के साथ इसकी तुलना की जा सकती है—

पाटेर खेतेर भितर दिये घाटेर डिङा बाइ—
तोबु आमार हाटेर साथे कोनो बाँधना नाइ;
शिरा-ओठा फाटा होत हालेर गोड़ा धरि
आमि शुधु आपन मने एपार ओपार करि

इत्यादि

"मै पाट के खेतो के भीतर से घाट की छोटी नाव खेता हूं, फिर भी हाट के साथ मेरा कोई बन्धन नही है। नस चमकते हुए फटे हाथो से मै पतवार पकड़ता हूँ, मै केवल अपने आप ही इस पार से उस पार करता रहता हूं।"

"तुम लोग खेत, फ़सल, बारिश, बादल, बाढ़ की बात सोचते रहते हो, भादो का धान कितना हिस्सा डूबा, कितना बचा, किन्तु इन बातो मे मेरी कोई दिलचस्पी नही है, मै केवल नियमानुसार घाट की नाव को खेता रहता हूँ।"

"भरी नदी में भाद्र भरी बाढ़ लेकर आता है, लाल पानी से दोनो किनारे एक से हो जाते है। बॉस से ज़मीन का पता नही लगता, न कोई थाह मिलती है, फिर भी दिन और रात मे मुझे छुट्टी कब मिलती है।"

"अकस्मात् जिस दिन बाढ़ के पानी से खेत भर जाते है, धान के खेत मे घुटना तक पानी होता है और पाट के खेत मे गला भर पानी होता है, धान का केवल ऊपरी हिस्सा पानी पर हिलता रहता है उस समय मेरी नैया डगमग-डगमग उन्ही के पास होकर निकलती है।"

"वे पगडंडियाँ कहॉ गईं और वे बॉध ही कहॉ गये, बबूल के पेड़ो की चौहद्दी को लेकर वे झगड़े ही कहाँ गये? बन्धन हीन बाढ़ के सामने भला यह सब नियम क़ानून कहॉ चलते है, इसलिये असीम तैराकी करते हुए मै नाव खेता रहता हूँ।"

"कमर तक पानी में खड़े होकर किसान हँसुआ चलाता है, धान अग्रभाग की सोंधी गन्ध हवा में फिरती रहती है। ललाई लिये हुए धान के अग्रभागों को पानी के नीचे नवाकर मेरी नाव उसीके बीच से चलती है।"

"धान की गड्डियों को मैं इस पार उस पार करता हूँ, पाट के ढेर को भी ढोता-भरता हूं, दिनरात कितने लोगों की कितनी ही बातें सुनता हूँ, मैं बैठकर मन-ही मन खेने का हिसाब लगाता रहता हूँ।"

"पानी के ऊपर से दुर-सा बिखराकर सूर्य उगता है, दिन का खेना खतमकर पश्चिम में डूब जाता है। बारहों महीने में एक भी दिन उसे छुट्टी नहीं है, उसीके साथ मैं भी घाट की नाव को खेता हूँ।"

"देशेर लोक" (देहाती) नामक कविता में देहाती दुनिया का अत्यन्त सच्चा चित्र खींचने के बाद वे कहते हैं—

अविचार अत्याचार भाबे निज करमेर फल
नयनेर जल छाड़ा ताइ किछु थाके ना सम्वल

याने 'वह अविचार तथा अत्याचार को अपना ही कर्म-फल सोचता है, इसीलिये आँसुओं के सिवा उसका कोई सम्वल नहीं है।' कवि जो वर्णन करते हैं वह है तो सच, इस अभागे देश के ग़रीबों की यही मनोवृत्ति है, किन्तु एक क्रान्तिकारी कवि की तरह बजाय इसके कि वे इनको कविता का चाबुक मारकर उठाते वे उसकी इस भाग्यवादी मनोवृत्ति की सराहना करते हैं

एई देश—एई लोक—हासिओ ना शिक्षा-अभिमानी
धर्म जाने तार काछे सत्य मूल्य कार कतोखानि

याने 'ऐसा तो हमारा देहात है, और ये देहाती हैं, सुनकर हे शिक्षाभिमानी मत हँसना, धर्म जानता है कि उसके निकट किसकी कितनी सच्ची क़ीमत है।'

यह तो एक तरह से प्रतिक्रियावाद का प्रचार करना हुआ, यह तो वही बात हुई कि इस दुनिया मे ज़मीन्दारों की ज़बर्दस्ती और जुल्म सहो, इसके बदले मे अगली दुनिया मे हूरो-गिलमा मिलेंगे। मालूम होता है ऐसा लिखते समय कवि यतीन्द्रमोहन "एबार फिराओ मोरे' नामक रवीन्द्रनाथ की कविता के उस अंश को भूल गये

एई सब मूढ़ म्लान मुखे
दिते हबे भाषा, एई सब श्रन्त, शुष्क, भग्न बुके
ध्वनिया तुलिते हबे आशा, डाकिया बलिते हबे
मुहूर्त तुलिया शिर एकत्र दाँड़ाओ देखि सबे,
जार भये तुमि भीत से अन्यायी भीरू तोमा चेये
जखनि जागिबे तुमि तखनि से पलाइबे धेये +

रवीन्द्रनाथ भी *idealist* होने के नाते ऐसे मामलो मे अन्त तक पूरी तरह निर्बाह नही पाते, किन्तु अक्सर उनकी प्रतिभा उनको इस प्रकार की ग़लती से बचा भी लेती है। यतीन्द्रमोहन की यह मनोवृत्ति हम उनकी "गौरी" नामक कविता को रवीन्द्रनाथ की उसी सन् मे प्रकाशित 'येनास्याः पितरो जाता,' नामक कविता की तुलना करते है तो पाते है। दोनो मे एक लड़की का विवाह उससे कहीं अधिक उम्र वाले बुड्ढे वर से होता है। दोनो विधवा हो जाती है, किन्तु दोनो में बड़ा प्रभेद है। यतीन्द्रमोहन की गौरी विधवा होती है, रवीन्द्रनाथ की मजुलिका भी विधवा होती है। दोनो पितृसेवा तथा घर के कामकाज मे मन लगाने की व्यर्थ चेष्टा करती हैं।

मंजुलिका का
दु:खे सुखे दिन हये जाय गत
स्रोतेर जले झरे पड़ा भेसे जावा फूलेर मतो
अवशेषे होलो

+ इसका अनुवाद रवीन्द्रनाथ के 'एबार फिराओ मोरे' में आ गया।

मंजुलिकार वयस भरा सोलो

यानै "दुख सुख मे उसके दिन बीत जाते थे, मानो वह कोई स्रोत के पानी में गिरा हुआ तथा बहा हुआ फूल थी। अन्त मे मंजुलिका की उम्र सोलह हुई।"

और गौरी का क्या हुआ ?

काल कि कारेओ छाड़े

वछर वछर मेयेर वयस बाड़े।

आट थेके से षोलय पलो, बुझलो क्रमे निजे

अवस्था तार कि जे।

याने "समय किसी को भला छोड़ता है ? आठ से उसकी उम्र बढ़ते-बढ़ते सोलह वर्ष की हो गई। धीरे-धीरे वह समझ गई कि अपनी परिस्थिति क्या है।"

अपनी परिस्थिति समझने पर भी वह अन्त तक लाखो हिन्दू वालविधवाओं की तरह मूक रहकर अपने पिता की मूर्खता का अपने प्राण का तिल-तिल देकर प्रायश्चित्त करती है। वह एक "अनाघ्रात स्वर्ण-चम्पा" की तरह ही अपना जीवनलीला समाप्त करती है।

वर्षों तक रवीन्द्रनाथ की मंजुलिका भी इसी तरह रहती है। मंजुलिका की माँ एक दिन उसके पिता से कहती है—क्यो जी मंजु की शादी न कर दी जाय।

पिता हुक्के के नल से मुंह हटाकर कहता है—मुझे मर जाने दो फिर माँ और बेटी एक ही साईत में शादी कर लेना—और मुंह फेरकर अपना उपन्यास पढ़ने लगता है। बात यहीं खतम हो जाती है।

कुछ दिनो में माता मर जाती है। पिता कुछ दिन बीमार रहते हैं, बीमारी में पुलिन डाक्टर उन्हें देखता है। अच्छे वे हो जाते

हैं, किन्तु कुछ ही दिन मे वे इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि बिना विवाह किये संसार-धर्म का निर्वाह नही हो सकता। तदनुसार वे विवाह करने जाते है किन्तु विवाह से लौटने के बाद वे देखते हैं कि मंजुलिका घर से भाग गई है, और पुलिन से शादी करने के बाद दोनो फर्रुखाबाद चले गये है।

ऊपर के उदाहरण से स्पष्ट है कि यतीन्द्रमोहन बागची अपने गुरु के पीछे रह गये है, यह तो मतामत की दृष्टि से हुआ, किन्तु कला के क्षेत्र मे भी सम्पूर्ण रूप से वे उसी लीक पर चलते है जिस पर रवीन्द्रनाथ चल चुके है। हम कही भी उनमे कोई मौलिक धारा नही देखते। ऊपर जिन कविताओ की विषयवस्तु की तुलना की गई है उनके विषय मे मजे की बात यह है कि रवीन्द्रनाथ की कविता यतीन्द्रमोहन की कविता के ठीक एक महीना पहिले 'प्रवासी' मे प्रकाशित हुई थी। क्या यह रवीन्द्रनाथ के उत्तर मे लिखी गई थी ? यतीन्द्रमोहन की कविता की आखिरी पंक्तियो को देखकर यह सन्देह होता है कि शायद यह जवाब मे लिखी गई थी। वे पंक्तियॉ यह है

तबु जेनो, गौरी एरि नाम—

रूपे गुणे नामेर मतन—चोखेर तृप्ति चित्तेर विश्राम।

"फिर भी जानना, गौरी इसी का नाम है, रूप तथा गुण में नाम की तरह ही है, आँखों के लिये तृप्ति और चित्त के लिये विश्राम है।

कालिदास राय

कालिदास राय भी रवीन्द्र-प्रभाव मे पले हुए एक कवि हैं, सत्येन्द्र-नाथ की तरह वे भाषा और छन्द के आचार्य नही जॅचते, तथा रवीन्द्र-प्रभाव होते हुए भी उन्होने किसी जगह भी रहस्यवाद को पास नहीं फटकने दिया। उनके विषयो मे ही कुछ ऐसी मधुरता

होती है तथा विषय को वे प्रतिभा के साथ निभाते है कि उनकी कवितायें पठनीय तथा मौलिक-रसयुक्त हो जाती है। मध्यवित्त श्रेणी के छोटे-छोटे सुख-दु:खो को उन्होने इस .खूबी से चित्रित किया है, कि देखते ही बनता है। "छात्रधारा" नामक कविता मे उन्होने शिक्षको को इस भावुकता के साथ चित्रित किया है कि कोई भी सहृदय शिक्षक इसे पढ़कर आँसू नही रोक सकेगा। प्रत्येक समाज मे ये शिक्षक कितने उपयोगी है, और लोग उन्हे कितना बेकार समझते है। इस कविता को पढ़ते-पढ़ते हमे चैकौफ के उस शिक्षक का स्मरण हो आया, जो मरते समय प्रलाप मे कहता है "वालगा नदी वाल्डाई पहाड़ से निकलकर फलाने समुद्र मे जाकर गिरती है।" करुण और हास्यरसका अद्‌भुत मिश्रण है, कहानी की पश्चाद्‌भूमि के कारण यह दृश्य और भी करुण हो जाता है। हम कालिदास राय की उस कविता का अनुवाद नीचे देते हैं—

छात्र धारा

प्रति वर्ष वे झुंड के झुंड इस विद्यामठ के नीचे आते हैं और वे कलरव करते हुए चले जाते है, कैशोर का किसलय पत्ते मे याने यौवन के हरेपन के गौरव को प्राप्त करते हैं। उन्हे मै प्यार करता हूँ, पास बुलाता हूँ, सबका नाम जान रखता हूँ, रोज़-रोज़ उनसे भेंट होती है। डॉट-फटकार बताता हूँ, एक पहर तक सीख भी देता हूँ, किन्तु फिर भी कुछ याद नही रहती। दो-चार दिन की यह मुलाक़ात, समुद्र के बालू पर जैसे रेखा, नई लहर आते ही पुछ जाती है। नन्हे पैरों के दाग नये-नये चरण-चिह्नो की ताड़नासे एक-से हो जाते हैं। वे यहाँ एकत्र तो होते है किन्तु जानते नही कहाँ जायेंगे, विद्यालय मानो एक सराय है। दो-चार-दस दिन एकत्र किसी कामको करते है, फिर मिलकर जैसे नीति-सार और कथा-माला गूथते है।

कभी रास्ते मे भेंट हो जाती है तो कोई गुरु कहकर हाथ उठाकर नमस्कार करता है तो मैं हँसता हुआ कहता हूँ "जीते रहो, क्या काम काज हो रहा है ?"

सोचते-सोचते चलता हूँ, नाम तो याद नही आता, कितने दिन पहिले छात्र था ? याददाश्त को लेकर खींचातानी करता हूँ, कैशोर का उसका चेहरा याद आकर भी नही याद आता। आना-जाना रोज का होता है, बहुत दिनों तक भेंट होती है, फिर भी वे याद क्यो नही रहते ? व्यक्ति जाकर झुंड मे मिल जाता है, गले मे माला पहिन लेने पर प्रत्येक फूल को भला कौन याद रख सकता है ?

इस जीवन पर तोड़-फोड़ मचाकर उसे हरा तथा सरस करते हुए छात्रों की धारा बह जाती है, वह फेनिलता तथा उच्छ्वास तुच्छ हो जाता है और कलरव विलीन हो जाता है। जब मै बारपार देखता हूँ तो मेरे मन को घेरकर कुछ म्लान चेहरे जग उठते है, जो कलरवमय महोत्सव है वह तो सब भूल जाते है, किन्तु ये म्लान मुख याद रह जाते है।

कोई तो भूख से म्लान है, कोई रोग से अधमरा है, थकावट से किसी की चितवन करुण हो रही है। कोई बेत के डर से कोठरी में छिपा रहता है, किसी की आँखे नींद से कड़वी है। कोई क्लास मे बैठकर जँगले से बाहर की ओर देखता है, मानो कोई पिंजरे में बन्द चिड़िया हो। आस्मान में पतंग को देखकर उसका मन उड़ान भरने लगता है, उसके चेहरे पर विषाद की उत्कट छाया पड़ती है। कोई खेल के मैदान को यादकर सबक भूल जाता है, किसी को बुद्धि मे ही बात नही आती; कोई तो घर को तथा स्नेहभरे भाई-बहिनों को यादकर बारबार घड़ी की ओर देखता है।

उदार वायु स्वास्थ्य तथा आयु लेकर पुकारती है, वह इस पुकार को बन्द कमरे मे बैठकर सुनती है। हाथ में स्याही मुँह में स्याही ऐसा बच्चा वैसा ही मालूम देता है मानों नन्हा-सा चाँद

वादलों में ढॅका हो, यह मुझे याद पड़ता है। और सब तो भूल चुका हूँ किन्तु यह सब भूल न सका। एकबार आँख मूँदते ही ये म्लान-मुखो की पंक्तियाँ मन को आकुल कर डालती है।

निरुपमा देवी

निरुपमा देवी बॅगला मे विशेष रूप से अपने उपन्यासो के कारण प्रसिद्ध थी, किन्तु उन्होंने कुछ अच्छी कवितायें भी लिखी है। सच बात तो यह है कि बंगला के सभी सुकुमार साहित्य के लेखक साथ-साथ कवि भी होते है। शरत्चन्द आदि कुछ ऐसे औपन्यासिक बॅगला भाषा मे हुए है जिन्होंने कविता कभी नहीं लिखी, किन्तु वे अपवाद है न कि नियम। हम जब अति-आधुनिक बॅगला काव्य पर आयेंगे तो दिखलायेंगे बॅगला मे अति आधुनिक कविता के जो प्रवर्तक हैं वे ही अति-आधुनिक गल्पकार भी है। निरुपमा देवी की 'तृण' नामक कविता का पहिला *Stanza* हम उद्धृत करते है, पाठक देखेंगे इसकी भाषा बड़ी संगीतमय है।

मोरा कचि कचि श्याम तृणदल
करि जीवनेर पथ सुश्यामल
उठि धरणीर प्राण फुँड़िया
रहि कठिनेर बुक जुड़िया
राखि घन मखमले मुड़िया
एइ कंकरमय धरातल।
मोरा कचि कचि श्याम तृणदल।

"हम हरी-हरी नरम घास के दल हैं, हम जीवन के पथ को हरा बनाते है। हम पृथिवी का प्राण फोड़कर उठते हैं, कठिन के हृदय को व्याप्त कर हम रहते हैं, हम इस कंकड़मय धरातल को घने मखमल से मोड़ रखते है। हम है हरी-हरी नरम घास के दल।"

यह कविता भी एक रूपक है। निरुपमा देवी पर रवीन्द्रनाथ का प्रभाव स्पष्ट है, किन्तु वह रहस्यवाद से सम्बन्ध नहीं रखती। फिर भी वह एक भाववादिनी (*idealist*) लेखिका थी।

यतीन्द्रनाथ सेनगुप्त

यतीन्द्रनाथ सेनगुप्त की एक कविता 'हाट' का कुछ अंश लीजिये †

दूरे दूरे ग्राम दशबारोखानि
माझे एकखानि हाट
सन्ध्याय सेथा ज्वले ना प्रदीप
प्रभाते पड़े न झाँट।
वेचा केना सेरे विकाल-वेलाय
जे जाहार सबे घरे फिरे जाय
बकेर पाखाय आलोक लुकाय
छाड़ये पुबेर माठ
दूरे दूरे ग्रामे ज्वले उठे दीप—
आँधारेते थाके हाट।

'दूर-दूर पर दस बारह गाँव हैं और बीच में एक हाट लगता है, सन्ध्या के समय न तो वहाँ दीया जलता है न तो सवेरे झाड़ू ही लगता है। खरीदना-बेचना समाप्तकर सब अपने-अपने घर ही लौट जाते है, बगुले के पर पर चल कर रोशनी मानो पूर्व का मैदान पार कर छिप जाती है। दूर गाँवो मे दीये जल उठते हैं, किन्तु हाट अंधेरे में ही रहता है।

दिवसेते सेथा कतो कोलाहल

---

† हाट माने वह गाँव का बाजार जो केवल हफ्ते मे एक या दो दिन लगता है।

चेना अचेनार भिड़े,

कतो ना छिन्न चरणचिह्न

छड़ानो से ठाँई घिरे।

\+ + + +

दिवसे थाके ना कथार अन्त

चेना अचेनार भिड़े,

कतो के आसिलो, कतो बा आसिछे

कतो ना आसिबे हेथा

ओपारेर लोके नामाले पसरा

छुटे एपारेर क्रेता।

हिसाब नाहिरे एलो आर गेलो

कतो क्रेता-विक्रेता

'दिन भर यहाँ कितना कोलाहल रहता है, परिचित तथा अपरिचित की भीड़ रहती है। उस जगह को घेरकर न मालूम कितने लोगों के पदचिह्न बने हुए है। दिन में तो इस परिचित अपरिचित की भीड़ में बातो का अन्त नही रहता। कितने आये, कितने आ रहे है, कितने आयेंगे। उस पार के लोग यदि अपना सामान उतारें तो इस पार के क्रेता दौड़ पड़ते है। इसका कुछ हिसाब नहीं कि कितने क्रेता और विक्रेता आये।'

'नये सिरे से यह हाट हर बार बैठता-टूटता है, दिन रात नये यात्री हैं, इस नाटक का खेल जारी है। कोई तो जाते वक्त गाँठ में कुछ बाँध कर जाता है और कोई रोता है, उदार आकाश और मुक्त वायु मे चिरकाल तक एक खेल चलता रहता है।

इस कविता पर रवीन्द्र-प्रभाव स्पष्ट है। रवीन्द्रनाथ एक वास्तववादी नहीं बल्कि भाववादी होने पर भी अपनी प्रतिभा की

विराट तूम्बी के कारण पानी के ऊपर ही रहते हैं, किन्तु उनके बहुत से चेलो मे इस प्रतिभा की देन न होनेके कारण वे अक्सर रूपक तक ही रह जाते है याने रूप को गौण बनाकर कविता लिखते हैं। उसी का यह कविता एक उदाहरण है। हाट का वर्णन पढ़कर कि वहाँ साँझ का दीया भी नही जलता हमारे दिल मे करुणा का उद्रेक होते न होते हम अनुभव करते हैं कि कवि कह रहे है खेत की लेकिन गा रहे है खलिहान की। इस दृष्टि से बँगला भाषा को अतुल शब्दों का ऐश्वर्य देने पर भी रवीन्द्रनाथ का प्रभाव बँगला कविता के आधुनिक होने में बाधक साबित हुई। जिसे देखो वही *Allegory*, *symbolism* तथा *mystism* की तरफ दौड़ा। सभी कविता मे इस तरह बाते करने लगे मानो वे इस सृष्टि के पीछे जो रहस्य है उसके गुप्तगृह मे उनका प्रवेश हो चुका है।

काज़ी नजरुलइस्लाम

काज़ी नजरुल बँगला के एक शक्तिशाली कवि है, उनकी कविता ने एक ज़माने मे बँगला साहित्य मे बड़ा तहलका मचाया था। एक धूमकेतु की तरह वे महायुद्ध के बाद बँगला साहित्य मे अग्नि वीणा लेकर आये थे, विद्रोही के रूप मे वे आये, किन्तु बाद को विश्लेषण करने पर मालूम हुआ कि उनकी अपनी कुछ विशेषता होने पर भी वे रवीन्द्रीय सौरमंडल के ही ज्योतिष्क हैं। हाँ, वे रवीन्द्रनाथ के उन एकलव्यो मे नही है जो गुरु के ही इर्दगिर्द चक्कर काटते रहे, कही-कही क़ाजी मे नवीनता की पुट है। क़ाजी नजरुल भाषा पर ज़बर्दस्त अधिकार रखते हैं, उनकी कविता मे ओज-गुण एक नई चीज़ है। उनके पहिले के कवियो में द्विजेन्द्रलाल राय में ही शायद उनसे ज़्यादा ओज है, किन्तु द्विजेन्द्रलाल का ओज भाव-प्रधान है, और क़ाजी नजरुल का भाषा-प्रधान। उनकी 'विद्रोही' कविता की एक ज़माने मे बड़ी धूम थी, उसमें बम, माइन, डिना-माइट की भरमार है। यह एक बहुत ही लम्बी कविता है। इनकी

किसी-किसी कविता में इजराईल, इसराफील, सूर, क़यामत आदि इस्लामी पौराणिक-व्यक्ति, वस्तु तथा घटनाओं का उल्लेख है, किन्तु इससे उनकी कविता का खस्तापन बढ़ा है घटा नहीं। ख़ैर अक्सर वे ऐसी उपमा, उपमेयों को न लाकर बॅंगला कविता के अनुसार ही चलते है। उनकी सौ में निन्यानवे कविता मे कोई ऐसी बात नहीं है जिससे मालूम हो कि वे मुसलमान परिवार मे पैदा हुए हैं। काज़ी नज़रुल बॅंगला के एक ऊँचे दर्जे के कवि है, उनका स्थान सत्येन्द्रनाथ दत्त से कम नही है। हम नीचे उनकी 'सिन्धु' नामक कविता का कुछ अंश उद्धृत करते है—

> हे क्षुधित बन्धु मोर तृषित जलधि
> एतो जल बुके तबो, तबु नाहि तृषार अवधि।
> एतो नदी, उपनदी तव पदे करे आत्मदान,
> बुभुक्षु, तोवु कि तव भरिलो ना प्राण।
> दुरन्त गो महावाहु
> ओगो राहु
> तीन भाग ग्रसियाछ, एक भाग बाकी,
> सुरा नाई—पात्र हाते कॉपितेछे साकी।

"हे मेरे क्षुधित मित्र, तृपित जलधि, तुम्हारे हृदय मे इतना जल है फिर भी प्यास की कुछ सीमा नहीं है। इतनी नदियाॅ तथा उपनदियाॅ तुम्हारे चरणों मे आत्मदान करती है, किन्तु हे बुभुक्षु फिर भी क्या तुम्हारा दिल न भरा? हे दुरन्त महाबाहु हे राहु तुमनेतीन भाग तो ग्रस लिया अब एक भाग बाक़ी है। शराब नहीं रही, इसलिये हाथ मे पात्र लेकर साक़ी कॉपता है।"

समुद्र पर बहुतो ने लिखा है, किन्तु निम्न-लिखित पंक्तियो मे फिर भी कुछ विशेष नई बात है—

मन्थन-मन्दार दिया दस्यु सुरासुर
मथिया लुंठिया गेछे तव रत्नपुर,
हरियाछे उच्चैःश्रवा, तव लक्ष्मी, तव शशीप्रिया
तारा सब आछे आज सुखे स्वर्गे गिया।
करेछे लुन्ठन,
तोमार अमृत-सुधा मार जीवन तो।
सब गेछे आछे शुधु क्रन्दन कल्लोल,
आछे ज्वाला आछे स्मृति व्यथा-उतरोल।
उर्ध्वे शून्य, निम्ने शून्य, शून्य चारिधार
मध्ये काँदे वारिधार, सीमा हीन रिक्त हाहाकार
हे महान हे चिर बिरही
हे सिन्धु, हे वन्धु मोर, हे मोर विद्रोही
सुन्दर आमार,
नमस्कार।

"मन्दार रूपी मथनी से डाकू सुरासुरों ने तुम्हारे रत्न-पुर को मथकर लूट लिया है, तुम्हारा उच्चैःश्रवा हर लिया, तुम्हारी लक्ष्मी हर ली, तुम्हारी शशी-प्रिया को भी हर लिया, वे सब तो स्वर्ग में जाकर सुख से है। उन्होंने तुम्हारी सुधा भी हर ली। सब चला गया, सिर्फ क्रन्दन-कल्लोल ही रह गया। केवल ज्वाला बाकी है, तथा व्यथा से उतावली स्मृति मौजूद है। ऊपर शून्य है नीचे शून्य है, चारों तरफ शून्य है, बीच मे पानी की धारा रिक्त हाहाकार बनकर रोती है। हे महान्, हे चिर विरही समुद्र, हे मेरे मित्र, हे मेरे सुन्दर विद्रोही तुम्हे नमस्कार है।"

क़ाज़ी नज़रूल की कविता की यह विशेषता मालूम देती है कि

उसमे गति भी है, ओज भी है किन्तु कोई उद्देश्य नहीं। उनकी विद्रोही कविता इसी प्रकार की है। काजी नजरूल विद्रोही जरूर हैं, किन्तु उनके मन में विद्रोह का कोई स्पष्ट उद्देश्य न होने के कारण उनका विद्रोह अक्सर केवल साहित्यिक पैर फटफटाना मात्र रह जाता है। नजरूल की एक कविता है "देखबो एबार जगतटाके" याने "अब दुनिया देखूँगा"। इस कविता में कवि कहते हैं कि वे अब घर मे बन्द नही रहेंगे, वे अब दुनिया देखेंगे "कैसे वीर मल्लाह डूबकर समुद्र के अन्दर से मोती ले आता है, कैसे साहसी लोग दूर आकाश की ओर उड़ जाते हैं, कैसे और काहे के नशे में लाखो की तदाद में लोग मरते हैं, किसके अभियान में लोग हिमालय की चूड़ा में जाना चाहते हैं" इत्यादि कवि जानना चाहते है। वे अब पिंजरे में बन्द नही रहना चाहते, वे इन सब बातो को दुनिया घूमकर देखना चाहत है। वे पाताल फाड़कर नीचे उरतना चाहते है तथा फोड़कर आकाश मे उठना चाहते हैं। वे विश्वजगत को अपनी ही मुट्ठि मे भरकर देखना चाहते हैं। इतना होने पर भी सच बात तो यह है कि यह समझ मे नहीं आता कि कवि चाहते क्या हैं' नतीजा यह है कि ऐसी कविता का या तो आध्यात्मिक या छायावादी रहस्यवादी अर्थ लेना पड़ेगा।

मै समझता हूँ इस अस्पष्टता के लिये नजरूल को दोषी ठहराना ठीक नहीं होगा। सचमुच बात तो यह है कि नजरूल तथा उनके साथी विद्रोह करना चाहते है, किन्तु क्या करना चाहते हैं यह इन्हे पता नही। तोड़ना, फोड़ना, फाड़ना शब्द के अधिक इस्तेमाल से ही कोई क्रान्तिकारी या आधुनिक नही हो सकता।

राधाचरण चक्रवर्ती

राधाचरण चक्रवर्ती रावीन्द्रीय मंडल के एक कवि हैं, उनकी सभी कविता रहस्यवाद का पुट लिये हुए होती है। एक कविता लीजिये—

आकाशेर मेघरन्ध्रे अन्धकारे तुमि चेये थाको
तारा होये।
आँखिर पलकहारा होये
तुमि मोरे डाको
आभासे इङ्गिते शत डाके—
आमि थाकि क्षुद्रतार सीमा नागपाशे
धरणीर एक पाशे
बाँधा शत पाके
चारिदि के स्वार्थ-कोलाहल
उच्छृङ्खल
संग्राम संघात
घात प्रतिघात
तोबु माझे माझे आसे काने
तबो डाक—उदास करिया दय प्राणे।

"आकाश के बादलो के छेद से अन्धकार तुम मेरी ओर नक्षत्र होकर देखते हो, पलक नहीं मारते। तुम मुझे पुकारते हो, आभास से, इशारे से, सैकड़ो पुकार से। मै क्षुद्रता की सीमा नागपाश में सैकड़ों बन्धन से बँधा हुआ रहता हूँ। चारो तरफ स्वार्थ का कोलाहल है, उच्छृङ्खल है, संग्राम संघात है, घात प्रतिघात है। फिर भी बीच-बीच मे तुम्हारी पुकार आ ही जाती है, तुम्हारी पुकार प्राणो को उदास कर देती है।

चारिदिके कामना-अप्सरी
खेले लुकोचुरि-खेला करतले मोर दुरि चक्षुचेपे धरि
दृष्टि रोध करि,

तबु माझे माझे जेनो अङ्गुलिर फाँके
आँखिर किरण तबो आसि मोर लागे
नयनेर आगे
आलोहित रागे

"चारों तरफ़ कामना-अप्सरी मेरी दोनों आँखों को बन्दकर मुझसे लुकछिपौवल खेलती है। मेरी दृष्टि रुद्धकर, फिर भी बीच-बीच मे उँगलियो के बीच से तुम्हारी आँख की किरणें जैसे मुझे आँखो के सामने लाल-लाल दिखाई दे जाती है।"

जोब जाबो, तोबु आमि जाबो
हे अनन्त बलो बलो आमि तोमा पावो

\+ \+ \+ \+ \+

हे असीम तोमार माझारे भेसे जाबो चुपे चुपे

"जाऊँगा-जाऊँगा फिर भी मै जाऊँगा, हे अनन्त, तुम कह भर तो दो तुम मुझे मिलोगे।

सुधाकान्त राय चौधुरी

सुधाकान्त राय चौधुरी कोई बड़े कवि नहीं हैं, किन्तु फिर भी उनकी एक कविता 'मुक्तिर खेला' हम पाठको के सामने उपस्थित करते हैं। इसमे जेल में रहनेवाले एक क़ैदी के गहरे भाव चित्रित किये गये है

रुद्ध मम चित्त नित्य काँदे बन्दीशाले
तोबु वातायन-द्वार-पथे नव प्राते
जे आलोक जागे पूर्वदिगन्तेर भाले
आभाखानि तार लागे आसि मोर माथे।
पिंजरे राखिया मोरे संकीर्ण सीमाय,

केनो सुदूरेर पाने दृष्टि मोर टानो,
केनो चित्तपाखि जेथा क्लान्ति ते झिमाय
अरण्येर विहगेर गीतध्वनि आनो।

इत्यादि

"वन्दीशाला मे मेरा रुद्धचित्त नित्य रोता है, फिर भी रोज़ सबेरे जॅगले के रास्ते से जो रोशनी पूर्व क्षितिज के ललाट मे जागती है उसकी आभा आकर मेरे सिर पर लगती है। मुझे संकीर्ण सीमा में पिंजरे मे रखकर क्यो सुदूर की ओर मेरी दृष्टि को खीचकर तरसाते हो? जहाँ मेरी मन-चिड़िया थकावट से सोती-सी है, वहाँ जंगली चिड़ियोकी गीतध्वनि क्यो लाते हो? मै तो पथरीले दुर्ग मे बन्दी हूँ, फिर मेरे श्रावण के द्वार मे बारबार झर्ने का उद्दाम गीत की पुकार से खटखटाते हो, और इस प्रकार हृदय मे दुरन्त दुर्वार मुक्ति का वेग ला देते हो?"

जेल पर बहुत-सी कविताये लिखी जा चुकी है किन्तु इसमे कैदी के अन्तर की गहरी वेदना को भाषा दी गई है।

एक और कवि की कविता देकर हम इस दौर को समाप्त करते है।

सुरेन्द्रनाथ मैत्र

सुरेन्द्रनाथ मैत्र की इस कविता का नाम 'वात्सल्य' है, भाषा तथा छन्द में यह रवीन्द्रनाथ के प्रभाव से ओतप्रोत होते हुए भी इसकी कल्पना मे नवीनता है। हम केवल पहिला *stanza* उद्धृत करेंगे, बाकी का अनुवाद भर देंगे।

खेला घरे शिशु खेला करे
धूलिर फाटल-मेघे जेनो चाँदिमार सुधा झरे
हासि-ज्योत्स्ना भरा मुख तार

सेई आलो सेई हासि जननीर स्नेह नीलिमार
अतल जलधि-वक्षे आलोकेर शुभ्र आलिपना
आँकिछे कत ना
उच्छल तरङ्ग शिरे शिरे
आनन्देर सुमन्द समीरे।

"खेल के घर मे बच्चा खेलता है, धूल के फटे हुए बादल मे जैसे चन्द्रमा की सुधा टपक रही है। उसके चेहरे पर हँसी की ज्योत्स्ना है। यह रोशनी यह ज्योत्स्ना जननी के स्नेह-नील अतल जलधि के समान वक्षस्थल मे कितनी ही तरह के शुभ्र चित्रण की सृष्टि करता है। उसके चंचल तरंगों के ऊपर-ऊपर आनन्द की सुमन्द हवा मे।"

"दूर से कवि अकेला बैठकर इकटक देखता है इकटक देखता रहता है कि धरणी के धूल पर यह शिशु-शशी कैसा-कैसा खेल खेलता रहता है, और साथ ही साथ देखता रहता है स्नेह के सागर मे किस प्रकार की लहरें उफनती है। ज्योत्स्ना रूपी अमृत मे वह गलकर रह जाता है। जरा सी वह धूल लिपटी हुई देह समुद्र के भरे स्नेह को दीप्त करता है।"

४

अति—आधुनिक कविता

कहाँ पर आधुनिक साहित्य का अन्त होकर अति-आधुनिक युग का प्रारंभ होता है यह कहना बड़ा कठिन है। फिर यूरोपीय साहित्य मे जिसे हम आधुनिक कहेगे उसीकी बहुत कुछ हद तक हमे बॅगला मे कई कारणो से अति-आधुनिक कहकर परिभाषा करनी पड़ रही है। बॅगला मे इस प्रकार परिभाषा होने में गड़बड़ी का कारण यह हो रहा है कि रवीन्द्रनाथ की रचना का एक अंश तो यूरोपीय अर्थों मे भी आधुनिक है, किन्तु बाक़ी के लिये हम यह बात नही कह सकते, साथ ही उनको हम प्राचीन या अन्य किसी पर्याय मे नही डाल सकते। सुप्रसिद्ध समालोचक अजितकुमार चक्रवर्ती ने ठीक ही लिखा है कि विश्वमानविकता मे रवीन्द्रनाथ बालाजाक, ब्रौनिड, हूगो आदि किसी लेखक से उतरकर नही है, किन्तु उनकी चरित्रसृष्टि मे न तो वह विचित्रता है, न वास्तविकता, न अभिज्ञता का स्तरपर्याय, न उत्थान-पतन की लहरें, न पापपुण्य का घातप्रतिघात। ये ही विशेतायें हैं जिनसे यूरोपीय साहित्य तरंगित, फेनायित तथा बिक्षुब्ध बज रहा है। इसलिये कविता विशेष-कर गीतिकविता मे जहां वस्तु से कोई वास्ता नही रवीन्द्रनाथ अतुलनीय है। इसलिये कहानियो मे भी जहाँ घटना से कही बढ़-कर महत्त्वपूर्ण घटना का आन्तरिक सुर होता है वे अपना सानी नहीं रखते। रूपक नाट्य में भी रवीन्द्रनाथ को इसी कारण सफलता मिली है।

आधुनिकता की त्रिधारा

अवश्य इस युग मे मौजूद रहने के कारण आज के जीवन की

सैकडो समस्याये रवीन्द्रनाथ की अनुभूतिशील वीणा को बार-बार छू गई है। जिन कवियो को हमने रवीन्द्रनाथ के बाद गिनाया है वे भी इन विश्वव्यापी समस्याओ के महाप्लावन से न बच सके, किन्तु फिर भी उन पर उनका विशेष प्रभाव पड़ा यह कहने के लिये कोई कारण नही। बात यह है "बॅगला साहित्य में अब तक मुख्यत: *idealism* (भाववाद) का ही बोलबाला रहा, वकिम की कल्पना मे एक बड़े *ideal* का *sentiment* है, रवीन्द्रनाथ की कल्पना मे *Real* (वस्तु) तथा *ideal* (भाव) की एक समन्वयचेष्टा है, और जिनको हम भारतीयऔपन्यासिको मे सबसे ज्यादा प्रगतिशील तथा क्रान्तिकारी समझते है वे भी विश्लेषण करने पर वस्तुवादी (*realist*) नही पाये जाते, बल्कि उनके उपन्यासो में *Real* (वास्तविकता) का *emotional* (संवेदनमय इसलिये आत्मतान्त्रिक या *subjective*) रूप मिलेगा।"+ मोहितलाल ने इसके बाद लिखा " बांकिमचन्द्र की कल्पना मे वास्तविकता (*real*) एक बाधा के रूप नही थी, उनकी कल्पना थी सम्पूर्ण निरंकुश और निरापद; रवीन्द्रनाथ की कल्पना मे वास्तविकता रूपान्तरित हो गई है, मानो वास्तविकता की वास्तविकता ही लुप्त हो गई है शरत्-चन्द्र की काल्पन्य-वास्तविकता की समस्या जटिल हो चुकी है, वास्त-विकता के लिये एक प्रबल आवेग की सृष्टि हुई है। इस त्रिधारा से शायद बॅगला साहित्य का वस्तुवाद खतम हो गया। इसके आगे जो साहित्य होगा उसमे वास्तविकता के साथ वास्तविक रूप से निपटना पड़ेगा।"

कल जो आधुनिक था आज वह

आधुनिक शब्द एक तुलनात्मक शब्द है, जो चीज़ कल आधुनिक थी आज उसका प्राचीन कहलाना स्वाभाविक है। इसमें

† देखो आधुनिक बँगला साहित्य पृ २७०

रोने, पीटने, लड़ने या सिर धुनने की जरूरत नही। सच बात तो यह है इसमे हमे खुशी ही मनानी चाहिये। "कभी उन्नीसवी सदी भी तो आधुनिक थी, किन्तु बीसवी सदी में उसकी वह आधुनिकता मान्य कैसे हो सकती है? फलस्वरूप जो भी प्राचीन संस्कार युगधर्म के पैरों मे बेड़ी डालकर उसकी गति को कुंठित करता है उसे कुसंस्कार आख्या दी जा सकती है, और गति के पथ को रुद्ध करने के कारण वह निन्दनीय तथा बर्जनीय है। हमारे मन की पट-भूमि मे विभिन्न भॅवरो के ज़रिये से युग-युग तक जो कुसंस्कार पुंजीभूत हुए है उनके प्रभाव से छुटकारा पाना कठिन हो जाता है। सीमित संस्कारो के कुहरे मे ढके हुए साहित्यदेव का जो विकृत रूप हमारी ऑखो के सामने आता है उसीकी पूजा मे हम तन्मय हो जाते है, इस प्रकार हम अपनी मोहतन्द्रा पर शान्त-समाहित अवस्था समझने का भ्रम कर डालते है।" (१)

आर्थिक-सामाजिक परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य में उसके ध्येय, आधेय तथा रूप मे परिवर्तन होना अनिवार्य है। फिर भी इस अनिवार्य भवितव्यता को कभी के क्रान्तिकारी और उस समय के बड़े-बूढ़ो ने रोकना चाहा है, फलस्वरूप एक सघर्ष, तूफान तथा बातो की मारकाट शुरू हो गई है। यह एक अजीब बात है कि जिस क्रान्तिकारित्व या विचार स्वातंत्र्य की बदौलत वे साहित्य मे एक नये युग के प्रवर्तक हुए, उसीका अवलम्बनकर जब दूसरे उनसे भी आगे जाना चाहते है तो वे विधिनिषेधों की एक चीन की दीवार खड़ीकर उन्हें रोकते है, और जब इस पर भी ये नये मतवाले नही मानते तो उन्हे तरह-तरह से गालियाँ दी जाती है। "यहाँ तक कि लेख के चरित्र को छोड़कर लेखक के चरित्र पर हमले किये जाते हैं।" एक नवीनपंथी बंगाली समालोचक ने लिखा है—

"राजा राममोहन राय, केशव चन्द्र सेन, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर

---

(१) देखो प्रेमेन्द्र विश्वास—आधुनिक बाला गल्प

ये भी एक ज़माने में अर्वाचीन समझे जाते थे। आधुनिकता के अपराध मे उस ज़माने मे उनके विरुद्ध निन्दा होती थी, उनको बहुत से सामाजिक निर्यातन सहने पड़े। वंकिमचन्द्र, माईकेल, नवीनचन्द्र आदि को सामाजिक निर्यातन का सामना करना पड़ा था किन्तु निर्यातित होने का दुःख एक है और प्राचीन होने का दुःख दूसरा है। अभी हाल मे रवीन्द्रनाथ के सम्बन्ध में एक ऐसी ही शोकप्रद घटना घटी है। जो नारा दिया जा रहा है वह ग़लत है। रवि बाबू का इस बात पर अभिमान होना स्वाभाविक है कि अब उनका नाम लोग नवीनो के बही से काट दे रहे है, इस अभिमान को हम समझते हैं किन्तु रवीन्द्रनाथ के चेलो के पुनर्जन्म का उत्सव हम नही समझते। रवि बाबू ने नवीन का विजयगान किया है, उसके लिये उनको गालियाँ भी यथेष्ट दी गईं, किन्तु आज यदि उन्ही को प्राचीनता के शिविर में ढकेल दिया जाय तभी तो हम यह कह सकते हैं कि नवीनता की पुकार सत्य है। बड़े भारी आधुनिक तथा विद्रोही शरत्चन्द्र प्राचीन की श्रेणी मे जाकर मरे यह तो उनके विप्रदास की परिणति से ही स्पष्ट है। फिर भी इसमे रोने-धोने की बात क्या है यह हमारी समझ मे नही आती। यदि प्राचीन ही सब जगह पर अपना अधिकार रक्खें तो नूतन को जगह कहाँ मिलेगी। फिर तो हमें सबसे पहिले जीवविज्ञान को झूठा क़रार देना पड़ेगा यदि पिता ही चिरकाल तक मौजूद रहे तो सन्तान की ज़रूरत क्या है? फिर यदि पुत्र हुबहू पिता की ही तरह नहीं हुआ तो इस पर हम डाढ़ मार रोने क्यों लगेगे। फिर मनुष्यावतार का क्यों मीनावतार को ही पानी चढ़ाने से काम चल जाता।"

अति-आधुनिक साहित्य पर आक्षेप

अति-आधुनिक साहित्य पर तरह-तरह के आक्षेप किये गये हैं। कहा जाता है कि अति आधुनिक साहित्य छाग साहित्य है, प्राचीन साहित्य रामायण है तो यह कामायण है। अति-आधुनिक कविता

को कामो-दीपक तथा शरीर की पूजा करनेवाली वासनाकलुषित भी कहा गया है। मैं समझता हूँ यह एक बिल्कुल झूठी तथा बेबुनियाद बात है। बाईबल, रामायण, महाभारत से आज की कविता अधिक अश्लील है यह कहना ग़लत है। बॅगला मे जो कृत्तिवास की रामायण या काशीरामदास का महाभारत है उन्हे कोई भी *moralist* अपने लड़के को दे नहीं सकता। सच बात तो यह है कि आज की अश्लीलता मे कला का पुट है, किन्तु प्राचीनो में तो केवल नग्न, वीभत्स, अश्लीलता है। रहा यह कि अति-आधुनिक साहित्य मे शरीर को उसका उचित स्थान दिया गया है, हॉ कही-कही कुछ अति भी हुई है यह मै मानता हूँ, और यह स्वाभाविक ही है। आधुनिकतम मनोविश्लेषण शरीर और मन की एकमेवाद्वितीयता की ही दलील को पुष्ट करता है। ऐसी हालत मे शरीर पर से ऑख हटाकर कल्पना की धूमिल रंगीन धरा पर विचरण करना कभी वांछनीय नही हो सकता। अवश्य ही दुर्नीति का प्रचार करना अति-आधुनिक साहित्य का लक्ष्य नही हो सकता और न है। हॉ, जिन बातो को अब तक हमारे समाज के नीतिवान साहित्यिकों ने केवल अस्वीकार करके ही उड़ा देना चाहा था, किन्तु फिर भी जो थीं, और जिनका नतीजा बराबर हमारे सामने आता रहता था, उनको अति-आधुनिक साहित्य ने सब के सामने लाकर रख दिया है। यही हमारे बुज़ुर्गों के निकट दुर्नीति है। अति-आधुनिक साहित्य को कुछ बंगाली समालोचको ने *bathroom literature* भी कहा है, याने गुसलखाना साहित्य। इस आक्षेप का उत्तर यह है कि अति-आधुनिक अपने गुसलखाने को हमारे प्राचीनो के रसोईखाने से अधिक साफ़-सुथरा रखते है इसलिये यह कोई विशेष गाली नहीं है।

सच बात तो यह है यह सब बातें इसलिये उड़ाई जाती हैं कि प्राचीन अपनी गद्दी पर क़ायम रह सके, और यह विरोध-प्रचार है।

विधाता की सृष्टि बनाम कलाकार की

प्राचीनों की तरफ़ से वकालत करते हुए कवि रवीन्द्र कहते है—"विधाता की सृष्टि मे जो पुनरुक्ति है वही चिरसत्य है। प्राचीन को लेकर ही विधाता चिरकाल से इस पृथिवी मे इन्द्रजाल की रचना करते आये है, इस पर यदि उन्हे लज्जा न हो तो ..

बीच ही मे बात काटकर नवीन कहता है—"विधाता को भले ही लज्जा न हो, किन्तु मनुष्य को लज्जा है। मनुष्य का साहित्य, शिल्पकला, भास्कर्य, हमेशा नया ही रूप लेता रहा है। प्रागैतिहासिक युग मे एक चमेली जैसे फूलती थी आज भी वैसे ही फूलती है, परन्तु फिर भी विधाता की कला मे बट्टा नही लगता किन्तु उस युग का मनुष्य जैसी तस्वीरे खीचता था आज भी यदि वह वैसी ही खीचे तो आज उसके लिये लज्जा की कोई सीमा न रहे, प्रतिदिन नई सृष्टि करने मे ही उसकी कला की सार्थकता है।"

नवीन प्राचीन का कितना ऋणी

हमारे बुजुर्ग जब सभी बातों मे हार जाते है तो वे कहते है आखिर यह तुम्हारा अति-आधुनिक साहित्य आया कहॉ से, आखिर तुम्हारे बाप तो हम ही हैं। इसमे कोई सन्देह नही कि ऋण है, किन्तु ऋण कितना? फिर यदि अब के साहित्यिक उन्नीसवीं शताब्दी के साहित्य के ऋणी है तो क्या वे किसी और के ऋणी नही हैं। कविवर कहते है बाल्मीकि आये थे तभी उनका आना संभव हुआ, नवीन यहॉ पर तड़ से पूछ बैठता है बाल्मीकि का आना किसकी बदौलत संभव हुआ। फिर नवीन स्वयं ही कहता है "बच्चा मॉ से चलना सीखता है, किन्तु चलता है वह अपने ही जोर से; जिस रहस्य की खान से आदिम कवि ने प्रेरणा पाई थी उसीसे अति-आधुनिक प्रतिभाशाली कवि भी प्रेरणा पाता है। हम अतीत काल के गर्भ से आये हैं इसे हम अस्वीकार नहीं करते,

किन्तु माँ के गर्भ से बेटा निकला है केवल इसी तत्त्व पर यदि मा बेटे को हमेशा चलाना चाहे तो वह एक विभ्राट का रूप धारण करे। भूतकाल मनुष्य की अवचेतना (*subconscious*) में रहे तो ठीक है, यही उसका यथार्थ स्थान है किन्तु इसके बजाय कि पर्दे के पीछे से चुपचाप अपना भी प्रभाव डाले वह हमारी सारी चेतना को ही आच्छन्न कर ले यह एक भयंकर बात ही नहीं दैवदुर्विपाक होगा। यदि रवीन्द्रनाथ को समझने के लिये ईश्वर गुप्त, और ईश्वर गुप्त को समझने के लिये काशीराम दास को और काशीराम दास को समझने के लिये विद्यापति और जयदेव को, फिर इनको समझने के लिये अशोक की शिलालिपि पढ़नी पड़े तो बस हो चुका" †

साहित्य में चिरन्तन सत्य !

साहित्य मे तथा सर्वत्र इस बात के लिये अधिकतर मारकाट हुई कि गद्दीदारो ने हमेशा मुहम्मद की तरह यह दावा किया कि आखिरी पैगम्बर वे ही है, उन्होने जिस सत्य को पा लिया वही सत्य का चरम तथा परम विकास है। यही तो गलती है, यदि उनके समय मे विकास होता था तो क्या वजह है कि उसके बाद विकास न होगा। इस दावे के कारण ही नवीन और प्राचीन में बराबर साहित्य में तुमुल संग्राम हुआ है। शायद यह नवीन और प्राचीन, गद्दीदार और गद्दी के अधिकारी का संग्राम ही चिरन्तन सत्य है।

मध्यवित श्रेणी का नहीं जनता का साहित्य

हम कई बार लिख चुके है कि वंकिम कहिये; माइकेल कहिये द्विजेन्द्रलाल कहिये, रवीन्द्र कहिये इनमें से सभी मध्यवित श्रेणी के साहित्य के रचयिता थे। उन्ही के *sentiments*, *ideal* या *reality*

† यह नवीन श्री प्रेमेन्द्र विश्वास है

ही उनका उपजीव्य था। एक नवीन साहित्यिक की भाषा में सुनिये "साहित्य अब तक धनी तथा विलासियों की जयगाथा से परिपूर्ण था। अब राजे नवाबो प्रशस्ति तथा कहानी से ही उसका काम चलता था। यद्यपि आज जनता का भी वहाँ स्थान होने लगा है, किन्तु इतने ही से हम सन्तुष्ट नही हो सकते, हमे इनसे भी नीचे उतरकर जहाँ अपमान और अत्याचार हो रहा है उन सर्वहाराओ (*proletariat*) में जाना पड़ेगा। आज दुनिया के कारखाने और ज़मीनो के मालिक एक तरफ़ है, वे हैं पूँजीपति और ताल्लुकेदार दूसरी तरफ है किसान और मज़दूर, ये सर्वहारा है। यह श्रेणी-संग्राम आज बहुत ही स्पष्ट है और नज़दीकी चीज़ है। कुछ नही यदि जनसंख्या का अध्ययन किया जाय तो ये ही देश, ये ही जाति है। साहित्य का काम अब यह होगा कि वह इन किसान-मज़दूरो की सामाजिक तथा राष्ट्रीय चेतना को जगावे। वही साहित्य वास्तव मे राष्ट्रीय साहित्य होगा।" नवीन युग के नवीन समालोचक फिर कहते हैं—"यह जो साहित्य है, इसमे संभव है त्रुटियाँ हो, रहे। युग-युगान्तर के बन्धन को एक दिन में तोड़ने चले है, कुछ तो टूटेगा ही। सीमित संस्कारो के संकीर्ण दायरे में शान्ति भी है शृंखला भी किन्तु वहाँ वह जीवन की चंचलता ही कहाँ और मुक्ति का आनन्द कहाँ?"

वास्तविक परिस्थिति

ऊपर जो कुछ कहा गया वह समालोचना मात्र है, सच बात तो यह है अति-आधुनिक बँगला साहित्य अभी तैयार हो रहा है। इसमे सन्देह नही वह नई चीज़ है। एक ज़माने मे अर्थात् बीस-पचीस वर्ष पहिले रवीन्द्रनाथ को अधिक से अधिक अपनाना ही बँगला लेखको तथा कवियों का आदर्श था, किन्तु अब उनसे अधिक से अधिक अलग हटना ही मानों बहुतों का आदर्श हो रहा है। इस प्रयास में कुछ लोगों ने अति कर दी है, नतीजा यह है वे जिस

बात से बचना चाहते थे वे उसीके शिकार हो गये हैं। वे कृत्रिम हो गये, तथा अवास्तविक भी हो गये। फिर भी यह एक नवीनता है। बँगला का अति-आधुनिक गद्य तथा पद्य साहित्य धीरे-धीरे जनता का साहित्य शायद बने, किन्तु अभी वह जनता का साहित्य नही है। ठीक-ठीक कहा जाय तो साहित्य अभी धनी विलासी मध्यवित्त श्रेणी से उतरकर अब निम्नमध्यवित्त श्रेणी में (*lower middle class*) उतरा है। प्रेमेन्द्र मित्र, बुद्धदेव वसु, अचिन्त्यकुमार सेन गुप्त ये तीन अति-आधुनिक साहित्य के त्रयी विशेषत: शहर की निम्नमध्यवित्त श्रेणी की ग्लानि, दुःख, ग़रीबी के ही चित्रकार हैं। हाँ, शैलजानन्द मुखोपाध्याय ने कोयले की खानो के कुलियो को लेकर कुछ अत्यन्त शक्तिशाली साहित्य की रचना की है, किन्तु बस। फिर भी ये अति-आधुनिक लेखक जब कुलियों को लेकर भी साहित्य रचना करते हैं तो उनको एक-एक व्यक्ति के रूप मे देखते है, उनकी सामूहिक समस्याओ पर वे कम रोशनी डालते है। याद रहे कि बजाय दुर्गेशनन्दिनी के यदि हम कुन्तीकुमारी को लेकर गल्प, कविता लिखे तो वह अनिवार्य रूप से जनता का साहित्य नही होगा, हम यदि प्रेमिका के द्वारा प्रेमी को बजाय चाकोलेट के बक्स या फौन्टेन पेन उपहार रूप मे दिलवाने के यदि तेल को जलेबी या झब्बेदार नारा दिलवाये तो उससे साहित्य मे एक नवीनता जरूर आ जाती है, इसका हम स्वागत करते हैं, किन्तु केवल इन्ही बातो से यह साहित्य जनता का साहित्य पदवाच्य नहीं हो सकता। जनता का साहित्य वह है जो जनगण की आशा, आकांक्षा, भय, त्रास, हर्ष, आनन्द को रूप दे। दुःख की बात है कि अभी ऐसा साहित्य बँगला में भी कम है। इस बात के लिये दोष हमारे लेखकों का है, वे ऐसी श्रेणी से आते हैं कि वे इन बातो को समझ नहीं पाते, जनता की आत्मा तक उनकी पैठ नही है। रवीन्द्रनाथ ने 'चार अध्याय' नामक पुस्तक में राष्ट्रीय चेतना को

चोट पहुँचाकर अपने को पुलिसमैन की श्रेणी मे ला दिया है यह एक नवीन समालोचक ने लिखा है, सच है ; किन्तु आज के अति-आधुनिक लेखक को भी उन्हे राष्ट्रीयता के मामले मे चुप्पी के षड़यंत्र (*conspiracy of silence*) का दोषी बतलाया जा सकता है।

राष्ट्रीयता तथा श्रेणी-संघर्ष

बॅगला के अति-आधुनिक साहित्य मे प्रतिभा का अभाव नही है, किन्तु जनता के साहित्य की सृष्टि के लिये जिस साहस की जरूरत है वह शायद आज के लेखको मे प्रचुरता के साथ मौजूद नही है। इस साहस के अभाव का एक वाह्य कारण भी है, वह यह है कि सरकार के प्रहार से ये डरते है। मै यह नही कहता कि आज का उपन्यास या कविता केवल राजनीति की बॉदी हो जाय, किन्तु यह जरूर है कि आज की जनता के सामूहिक जीवन मे राजनीति को एक विशेष महत्त्व प्राप्त है। यह बात साहित्य मे झलक जानी चाहिये। यदि ऐसा न हो सका तो कहना पड़ेगा कि साहित्य चाहे कितना भी समृद्ध हो वह वास्तविकता से परे एक कल्पना-विलास मात्र है। राष्ट्रीयता की तरह श्रेणी-संघर्ष भी एक वास्तविकता है । मजदूर-किसानवर्ग अपनी युग-युग की उदासीनता छोड़कर जिस तरह अपने शोषको के विरुद्ध विद्रोह मे उठ खड़े हो रहे है वह आज एक वास्तविकता है। नये युग के लेखक को इस संघर्ष को भी प्रतिबिम्बित करना पड़ेगा। राम, श्याम, यदु, मधु की प्रेमलीला से यह कही बढ़कर वास्तविकता है, बल्कि ठीक कहा जाय तो यह वास्तविकताओ मे वास्तविकता है। एक वस्तुवादी लेखक भला इनसे मुँह कैसे मोड़ सकता है।

अति-आधुनिक साहित्य का क्षेत्र

हमने ऊपर जो कुछ कहा वह तो साधारण रूप से साहित्य के विषय मे कहा, किन्तु हमारा सम्बन्ध विशेष रूप से कविता से है।

हम पहिले देखें कि यूरोप में आधुनिक साहित्य ने अपने सामने क्या काम रक्खे हैं, श्री अजितकुमार चक्रवर्ती ने इनको यों गिनाया है—

(१) सामाजिक न्याय—समाज के अन्तर्गत प्रच्छन्न या प्रकट अन्याय तथा कथित उचश्रेणी के सर्वेसर्वापन तथा उत्पीड़न के प्रति विद्रोह। विक्टर ह्यूगो ने अपने *Les miserables* नामक प्रसिद्ध उपन्यास मे इस पर्याय का सूत्रपात किया है, टालस्टाय की कहानियों में भी इसको हम कहीं-कही प्रत्यक्ष करते है, किन्तु इबसेन के नाटकों में ही आकर हम इसको असली रूप में पाते हैं। उदाहरण स्वरूप *Pillars of Society* लिया जाय, इसमे कान्सल वर्निक अपने पापों का बोझ दूसरो पर कितनी ही चालाकी तथा फ़रेबो के द्वारा लादने की व्यर्थ चेष्टा करता रहा। आधुनिक समाज के स्तंभो की नीव इसी प्रकार दुर्बल है। वर्नार्डशा तथा गाल्सवर्दी इबसेनवादी हैं।

(२) समाजविज्ञान, जीवविज्ञान आदि के नये नये आविष्कार कला के वाहन बनाकर दिखलाये गये है। जैसे एक बात लीजिये *heredity* याने बशानुक्रम, इसको अवलम्बनकर इबसेन का *Ghost*, हौप्टमैन का *Conflagration*, पिनेरो का *Profligate*, आस्कार वाइल्ड का *Lady Windermere's Fan* लिखा गया है।

(३) पाप का विश्लेषण—अस्वाभाविक (*abnormal*) अस्वस्थ (*pathological*) तथा प्रतिसामाजिक (*anti-social*) अपराधों का विश्लेषण। इस श्रेणी मे *Emile Zola* आते हैं, इनसे भी बढ़कर है डास्टयएफस्कि का *Crime and Punishment* और *The Idiot* उपन्यास, स्ट्रीन्डबर्ग का *Father*, *Dance of Death*, हौप्टमैन का *Colleague Krampton*, *Reconciliation*, बर्नार्ड शा का *Mrs. Warren's profession* ब्रियो का *Damaged goods*, *maternity* आदि।

(४) श्रेणी-संघर्ष—गाल्सवर्दी, हौप्टमैन, बर्नार्ड शा आदि

में इसका प्रमाण मिलेगा। गाल्सवर्दी का *Strife* नाटक *Chairman John Anthony* और मज़दूरों के नेता *Roberts* का विरोध दिखलाया गया है। पूँजीपति एन्टनी समझता है पूँजीवाद की ही बदौलत समाज उन्नति कर रहा है, इसलिये मज़दूरों की माँग में उसे कुछ सत्य नहीं दिखाई पड़ता। हौप्टमैन का *Weavers* इसी श्रेणी का नाटक है। बर्नार्ड शा का *Widower's houses* इसी श्रेणी में आता है।

(५) परिवार तथा पारिवारिक सम्बन्धों का विश्लेषण। इस श्रेणी में इबसेन का *Little Eyolf*, स्ट्रीन्डबर्ग का *Father* तथा *The Connecting Link*, हौप्टमैन का *The Rats* आदि हैं।

(६) स्त्री-पुरुष के पारस्परिक सम्बन्ध का विचार। इसमे—

(क) मिथुन-प्रेरणा की लीला—इसमे स्ट्रीन्डबर्ग का *Countess Julie*, चेकौफ़ का *Uncle Vanya* बर्नार्ड शा का *Philanderes* आता है।

(ख) विवाह-सम्बन्धी समस्या—इसमें *Ibsen* की *Lady of the Sea*, *Doll's house*, टालस्टाय का *Krentzer Sonata*, गाल्सवर्दी का *The fugitive* शा की *Getting married* इत्यादि।

(ग) स्त्रियों की आर्थिक तथा सामाजिक स्वाधीनता का प्रश्न। उदाहरणतः इबसेन का *Doll's house* ब्रिओ का *The Woman on her own* आदि है।

आधुनिक कविता का क्षेत्र

स्पष्ट है कि ऊपर साहित्य के जो क्षेत्र अजित बाबू ने गिनाये हैं वे मुख्यतः गद्य साहित्य के बारे में लागू हो सकते है, किन्तु इससे कविता के क्षेत्र का भी अनुमान किया जा सकता है। एक बात इस सम्बन्ध मे याद रखने योग्य है कि आज की कविता कहाँ खतम होती है यह कहना मुश्किल है क्योंकि गद्य और पद्य का जो प्रभेद पहिले मान्य था वह अब विलीन-सा हो रहा है। आज की कविता

में अक्सर छन्द (याने जिसे किसी नियम में लाया जा सकता है) नही रहता, हिन्दी मे लोगो ने इसको रबड़ छन्द कहा है। एक बात सिर्फ इसमे देखते है कि यह कुछ सीढ़ी की तरह लिखा जाता है। कोई-कोई नवीन कवि ऐसे पहुँचे हुए है कि उनका कोई मतलब समझ में नही आता, शायद लेखक स्वयं आकर समझावें तो समझ में आवे। हिन्दी के नामी कवियो मे ऐसे है कि उनकी बहुत-सी कविताओं का कोई अर्थ नही होता, उनका अर्थ उन्हींको लेख लिख-कर समझाना पड़ता है इसलिये बॅगला में ऐसे कवि होंगे इसमें हिन्दी-वालो को कोई ताज्जुब नही होगा। सौभाग्य से ऐसे कवि कम है। हमें यह समझ मे आज तक नही आया कि ऐसी कवितायें जिनका मतलब सिवा कवि के कोई नही समझता छप कैसे जाती है, शायद सम्पादकगण इस कारण उसे छाप देते हैं कि वे पाठक के सामने कुछ नया पेश करना चाहते हैं।

आधुनिकतम कविता कोई वाद के विवाद मे पड़ी नही रह सकती, समग्र जीवन ही उसका क्षेत्र है। अंग्रेजी मे *Rupert Brooke* एक कवि हो गये हैं, उन्होने युद्ध ही पर लिखा है। किप्लिङ्ग एक तरह से साम्राज्यवाद के कवि थे। इसी प्रकार मै समझता हूँ जो भी लहर देश मे उठे उसका एक-एक कवि होना चाहिये अवश्य ऐसे भी कवि होंगे जो इन सबका केन्द्रविन्दु है उसको लेकर कविता लिखेगे।

हमने इस दौर में अब तक केवल एक निबन्ध के रूप में साधारण तौर पर इसलिये लिखा है कि अभी बॅगला में अति-आधुनिक साहित्य का रूप स्पष्ट नही हुआ, शायद यह तब तक स्पष्ट न हो जब तक उसमे कोई रवीन्द्रनाथ या शरत्चन्द्र पैदा न हो। फिर भी एक बात इस साहित्य मे सर्वत्र स्पष्ट है कि अब कवि तथा लेखक रवीन्द्रनाथ के प्रभाव से मुक्त होना चाहते है। पाश्चात्य-साहित्य में इस समय रूसी-साहित्य का बॅगला के लेखक बहुत अध्ययन करते हैं। इससे मालूम हो जाता है कि रवीन्द्र-प्रभावमुक्त

पूजावेदीमूले हेमतैजस झंकार करे आशंकार

"पाषाण-पुरी की सिटकनियाँ दूर से उसका हुंकार सुनकर खुल जाती हैं, पूजा की वेदी के सोने के बर्तनों से आशंका की झकार निकलती है। विराट मन्दिर के जंगी कुञ्जे स्वयं निकलकर भाग जाते-से है, अँधेरे गह्वर मे हाहाकार छा जाता है और मूर्ति के पत्थर आप से आप टुकड़े-टुकड़े हो जाते है। पुजारी पंडे झंडे उतार-कर आँगन में पटकनी खाकर गिर पड़ते है। सुनो वह नगाड़ा बजाते हुए आ पहुँचा कालापहाड़।"

कविता दीर्घ है, किन्तु फिर भी हम कुछ और *stanzas* देंगे।

"अकाल उठे हुए बादल की तरह वह काल-सा कालापहाड़ आ रहा है, डंकिनियाँ झुंड का झुंड चल रही है, उसके गले मे कंकालो का हार है। वह रक्त को शोषणकरनेवाली पाप की विभीषिका, प्राण को सिहरित करनेवाला मन्त्रगान, अन्धे की आरती तथा प्रदीप दान सब छुटाने आ रहा है। वह महाभयहारी, देवारि, मानव युगावतार है। वह शरीर का छाया-शृंखल मुक्त कर देगा तथा पत्थरों के बोझ को चूर्ण कर देगा।"

"करोड़ों आँखो से निकले हुए आँसुओ का झर्ना पत्थर के पैरों पर गिरा, पत्थर उससे घिस गया किन्तु अन्धे की आँख न खुली, जीव की चेतना का जड़ के ऊपर आरोप करते हुए कितनी ही चाँदनी रातें अँधेरी हो गईं, रक्त-लोलुप लोल रसनाओ पर अपने ही सरीखे अमृत का प्यासा समझकर बिता दिया। आज उसका अन्त हो गया, मोह का अवसान हो गया, वह देवताओ को दमन करनेवाला युगावतार आ रहा है। उसकी दुन्दुभि तथा नगाड़े बज रहे है। आ जो रहा है वह कालापहाड़।"

"अपने हाथो से दोनो पैरो में बेड़ी पहिनकर कमज़ोर जिसकी पूजा करते है, तथा हाथ जोड़कर दुआएँ माँगते हैं, आज उसकी अहो कैसी दुर्गति हो रही है। पिनाक कहाँ है, डमरू कहाँ है और

चक्र-सुदर्शन ही कहाँ है, आज मनुष्य से ही मन्दिरवासी अमरगण अभय माँग रहे है। लोकालय छोड़कर देवगण सात समुन्दर के पार भाग रहे है, जो भयंकर था आज उसकी भूल टूट चुकी। नगाड़े बज रहे है कड़कड़-कड़कड़ कालापहाड आ रहा है।"

"मठों को, मन्दिरो को तोड़ डालो, मूर्तियों को डुबा दो, वलि-उपचार तथा धूप, दीप, आरति को रसातल में जाने दो। न कोई ब्राह्मण है, न म्लेच्छ, न यवन, भगवान नही है, भक्त नहीं है। युग-युग मे केवल मनुष्य है, मनुष्य को ऐसा सोचने के लिये गज भर की छाती मात्र चाहिये। लोकालय छोड़कर देवतागण सात समुन्दर पार भाग रहे है + + + + "

इसमे सन्देह नही कि यह कविता इस युग (*Zeit-geist*) की द्योतक एक सुन्दर कविता है। रवीन्द्रनाथ इस कविता को कभी नही लिख सकते थे।

वनफुल उर्फ बलाईचाँद मुखोपाध्याय

वनफुल एकमात्र आधुनिक बँगला लेखक तथा कवि हैं जो अपने उपनाम से ही परिचित है। ये औपन्यासिक, गल्प लेखक तथा नाटककार भी हैं। इनकी कविताओं का छन्द तथा भापा सुन्दर होती है, मुख्यतः उन्होने हास्यरस की कविता लिखी है। नीचे 'छात्री ओ छात्र' नामक एक कविता दी जाती है।

छात्री ओ छात्र
चिरकालइ हय तारा
निन्दार पात्र
पड़ाशोना व्यापारेते मन नाइ कारु बा
वेशविन्यासे केऊ चकचके चारु बा
आधुनिकमना केह सिनेमार भक्त

खद्दरधारी कारो मतामत शक्त
केऊ भारी भीतु-भीतु, केऊ भारी त्वात्र,
छात्री ओ छात्र

"छात्री और छात्र, हमेशा विचारे निन्दा के पात्र होते है। पढ़ने-लिखने मे किसी का मन नहीं लगता, कोई बनठन कर बड़ी टीमटाम से रहते है, कोई नये फैशन के है तथा सिनेमा के भक्त है, कोई खद्दरधारी है, उनकी राय बड़ी कठिन है, कोई डरपोक हैं तो कोई त्वात्र है। छात्री और छात्र।"

इस कविता का जो कुछ कवित्व है वह छन्द मे ही होने के कारण अनुवाद देना व्यर्थ है

सजनीकान्त दास

सजनीकान्त दास एक अति-आधुनिक कवि है, उन्होंने प्रेम के देवता को जैसे सम्बोधन किया उसमे कुछ पंक्तियां ऐसी है कि उन्हें पढ़कर रवीन्द्र-भक्त को शायद मिरगी आ जाय। हम केवल उन्हीं पंक्तियों को उनकी विचित्रता के लिये देते है।

मृत सागरेर चारि पाडे आज आमरा कोरेछि भीड़
भीड़ करियाछि गाढ़ तिमिरेर तीरे
कांदितेछि अनाहारे—
रुटी नई प्रभु, माछेर टुकरा नाई।
तुमि एसो-एसो, ए मृत सागर पाये हेंटे हओ पार,
भास्वर देहे दाँड़ाओ अन्धकारे!
क्षुधित जनेरे रुटी दाओ, जल दाओ,
प्रेम दाओ प्रभु, तोमार अमर प्रेम।
धन्य कोरेछो मानुषे एकदा मानुषेर रूप धरि

से मानव मरियाछे
तोमार परशे मृतेरा लोभुक प्राण

"मरे हुओ के सागर की चारो दिशाओ मे आज हम जमा है, हमने गाढ़ अन्धकार के तीर मे भीड़ की है, हम अनाहार से रो रहे है। हे प्रभु रोटी नही है, मछली का टुकरा नही है। तुम आओ, आओ, इस मृत के सागर मे पैदल चलकर पार होकर आओ। अँधेरे मे भास्वर देह से खड़े हो जाओ। भूखो को रोटी दो पानी दो, प्रभु प्रेम दो, अपना अमर प्रेम। एक ज़माने मे तुमने मनुष्य का रूप धरकर मनुष्य को धन्य किया था। वे मानव जिनमे तुम पैदा हुए थे मर गये है, तुम्हारे स्पर्श से मरे हुओ को जीवन मिले।"

इस कविता का भाव तथा भाषा सब रवीन्द्र-सत्येन्द्र से पृथक है। स्वप्नलोक की अस्पष्टता इसमे नही है, इसमे है तेजस्वी परुष वास्तविकता। ज़रा कवि के साहस को देखिये, वे प्रेम के देवता से पुष्पक विमान या गरुड़ पर न आने को कहकर पैदल आने को कहते है। फिर उनसे शिकायत यह नही करते कि आजकल की कालेज-किशोरियाँ प्रेम नही चाहतीं मोटर चाहती है, बल्कि कहते है रोटी नही है, मछली का टुकरा नही है। फिर उनसे प्रेम नही माँगते बल्कि माँगते हैं रोटी, पानी, फिर सबसे पीछे प्रेम मांगते है। *Man does not live by bread alone* की कैसी नई व्याख्या है।

कहा जा सकता है कि यह कोई कविता नही है। विचार्य है। मैंने पहिले ही कहा एक नई धारा या *spirit* पैदा हो चुकी है, किन्तु जब तक कोई महान प्रतिभा पैदा नही होती जो अपनी आत्मा के अन्दर इस नई धारा को परिपाककर उसको एक कलामय रूप देने मे समर्थ हो तबतक यही सन्देह होता रहेगा। फिर रवीन्द्रनाथ को भी तो पूर्ण तरीके से समझने मे समय लगा था।

रवीन्द्रनाथ मैत्र

श्री रवीन्द्रनाथ मैत्र कुछ बड़ी मार्मिक कहानियो के लेखक के

रूप में प्रसिद्ध थे, किन्तु उनकी कविताओ की रचना में भी हम एक आधुनिक की आत्मा को स्पंदित होते हुए पाते है। वे बड़े ज़ोरो से लिखते हैं।

धरणीर बुके
धूलाय लभेछि जन्म, देवत्वेर नाहि अहमिका
सब अङ्गे माखि धूलि, आँकि भाले पंक जयरीर।
पथ बाहि चलि गर्व-सुखे
स्वर्गपाने तुलि अश्रुसिक्त समुज्वल मुखे।

'धरणी की छाती पर धूल मे हमारा जन्म हुआ है, देवत्व की अहमिका मुझमें नही है। सब अङ्गो में धूल लिपटा लेते हैं, ललाट पर कीचड़ की जयटीका लगाते है। हम गर्व मे तथा सुख मे रास्ते मे चलते है, स्वर्ग की ओर हमारा सिर उठा रहता है और मुख अश्रु सिक्त समुज्वल होता है।'

दंभभरे खरदृष्टि हाने
जाहारा दाँड़ाये दूरे नाहि चाहि ताहादेर पाने
दाँड़ाये माटिर परे स्वरगेर करे अभिनय
तारा—मोर नय, केह नय।

'जो लोग दूर से खड़े-खड़े घूरते हैं हम उनकी ओर नही देखते। जो लोग दूर खड़े है हम उनकी ओर नहीं देखते, जो मिट्टी पर खड़े रहकर स्वर्ग का अभिनय करते है वे हमारे नही है, नहीं वे कोई नहीं होते।'

कवि वेदना से ही अपनी अनुप्रेरणा लेते है, वे कहते है।

धरणीर जन्मतिथि हते
मानुष भासिया चले दुःखज्वाला वेदनार स्रोते

शंका ओ संशय द्विधा लज्जा भय संघाते फेनिल

\+ + + +

जतो वेदनार हाहा डुबे जाय केह नाही सोने
आमि कान पाति
सुर खुँजि तारि माझे, ताइ दिये गान मोर गाँथि

'धरणी की जन्मतिथि से ही मनुष्य दु:ख-ज्वाला की वेदना के स्रोत मे बह चलता है, वह स्रोत भी कैसा है कि शंका, संशय, द्विधा, लज्जा तथा भय के संघात से फेनिल। वेदनाओ के जितने हाहाकार डूब जाते है, कोई उन्हे नही सुनता, मै कान डालकर उन्हें सुनता हूँ, उसमे सुर खोजता हूँ तथा उसीसे अपना गान पिरोता हूँ।'

कवि मनुष्य को रक्त, मांस, अस्थि तथा भ्रान्ति से बना पाते है। थोड़ा-बहुत इस जीवन मे सुख शायद होता, किन्तु उसके बीच मे जाकर मृत्यु को बैठा दिया गया है। मरीचिका के लिये दौड़ जारी है, कवि भी दौड़नेवालो के हाथ मे हाथ डालकर दौड़ रहे है। कवि ने कभी कोई गान नही सुना, आनन्द कहाँ है उसका सन्धान नहीं पाया है, देवतागण लाखो पहरेदारो के बीच मे लोहे की दीवारो से घिरे रहकर भँवरहीन मन्दाकिनी के किनारे चिरश्याम पारिजात के नीचे बैठकर आनन्द-अमृत का जो दौर चलाते है कवि उसके स्वाद से परिचित नही। युग के बाद युग आता है, किन्तु कवि वही एक भाषा तथा अपूर्ण अतृप्त साध पेश करते है। चारो दिशायें प्रवंचित पिपासा के हाहाकार से भर उठती हैं। कम्पमान करो से प्याला गिर पड़ता है, इस पर कवि आर्तनाद करते है, पानी समझकर मुट्ठियो से पागल बालू खोदते है। उसीके ताल पर छन्द कवि बनाते हैं, उसीसे गान बनाते है।

निःसंदेह यह एक नया जगत है।

रवीन्द्रनाथ मैत्र से बँगला साहित्य को बड़ी आशायें थीं, किन्तु ३६ साल की उम्र में ही उनकी मृत्यु हो गई। ऊपर की कविता केवल एक उच्छ्वास भर न थी, उन्होने बराबर अपने जीवन में उन्ही की सेवा की जिनको कोई टका सेर नहीं पूछता और उन्हीके विषय मे लिखा। जिन पिछड़े हुए पतितो की अवरुद्ध वेदना भीतर-भीतर दम घुटकर रह जाती थी, उनकी इस वेदना को भाषा देकर सुलगा देना उनकी लेखनी की विशेषता है।

प्रेमेन्द्र मित्र

प्रेमेन्द्र मित्र बँगला के बहुत बड़े प्रतिभाशाली कवि तथा औपन्यासिक हैं, उनके सम्बन्ध में एक ज्ञातव्य बात यह है कि काशी मे उनका जन्म (१६०४) हुआ। उन्होने स्वयं ही कहा है।

आमि कवि जतो कामारेर आर कॉसारिर आर छुतोरेर
मुटे मजुरेर
—आमि कवि जतो इतरेर

"मै लोहारो का, ठठेरों का, बढ़ैइयो का, कुली तथा मजदूरो का कवि हूँ, मै सब इतरो का कवि हूँ।"

बुद्धदेव वसु ने प्रेमेन्द्र के सम्बन्ध मे जो लिखा है वह अनुधावन के योग्य है। वे लिखते है "प्रेमेन्द्र कविता उनकी स्वकीयता के द्वारा उज्ज्वल है। उनकी कविता दुनिया की छोटी से छोटी चीज़ से लेकर मनुष्य के भाग्यविधाता के चरणप्रान्त तक विस्तृत है, पुराना अखबार, भाड़े के मकान से लेकर सीमाहीन आकाश मे घूमते हुए ग्रह-उपग्रहो तक उनकी गतिविधि है। उनकी रचना-रीति ओजःशीला है, भाव-प्रगाढ़ता के गतिवेग से वह स्वयं ही तीक्ष्ण हो जाती है। मनुष्य की व्यर्थता, हीनता तथा दुर्बलता के सम्बन्ध मे गहरी चेतना ही उनके काव्य का मूल-सूत्र है। मनुष्य के घर मे उनका देवता जन्म लेता है, किन्तु घटनाओ के सघात से ज्ञात होता है कि देतवा कहीं नही है।

आज

विकृत क्षुधार फाँदे बन्दी मोर भगवान काँदे

'आज विकृत भूख के जाल मे क़ैदी होकर मेरा भगवान् रोता है।'

आधुनिक गणतान्त्रिक भाव उनकी कविता मे स्पष्ट है। उनकी एक प्रसिद्ध कविता 'महासागरेर नामहीन कूले' उद्धृत की जाती है—

महासागरेर नामहीन कूल

हतभागादेर बन्दरटीते भाई,

जगतेर जतो भाडा जाहाजेर भीड़।

माल बये-बये घाल होलो जारा

आर जाहादेर मास्तुल चौचिर

आर जाहादेर पाल पुडे गेलो

बुकेर आगुने भाई

सब जाहाजेर सेई आश्रय-नीड़

'महासागर के नामहीन किनारे में अभागो के बन्दर में दुनिया के जितने भी टूटे जहाज़ो की भीड़ है। जो जहाज़ माल ढोते-ढोते घायल हो गये, जिनकी मस्तूलों के धुर्रे उड़ गये, जिनके पाल सीने की आग से जल गये उन सब जहाज़ो का यह आश्रय-नीड़ है।'

'बड़े-बड़े अथाह कालेपानियो को मथ कर, नमकीन पानी में डूबते या नहाते, डूबे पहाड़ो के धक्कों को निगले हुए तथा आँधी से झकझोरे हुए जितने लबेजान जहाज़ बर्खास्त हो चुके हैं तथा जिनके अंजरपजर ढीले हो चुके है उन सब बेकार बेमसरफ़ जहाज़ो की भीड़ इन अभागो के बन्दर में है।'

'भाई दुनिया में बड़ी कड़ी चौकीदारी है यहाँ सौदागर भी बड़ा हुशियार है, जिसके पतवार अब पानी में कुछ कर नही पाते उन्हे

चुपचाप हट जाना पड़ता है। जिसके कमर का ज़ोर घट गया, जिसकी लकड़ी मे घुन लग गया, जिसका कलेजा फट गया या जन्म भर के लिये जो ज़ख्मी हो गया, सौदागर की जेटियो में या बहियों में ढूँढ़कर जिन्हे कही नही मिलेगा, उन जहाज़ो को महासागर के इस नामहीन किनारे पर अभागो के बन्दर में कोई भी पा सकता है। यहाँ उन्ही सब टूटे जहाज़ो की भीड़ है।'

'जिनकी रीढ़ टेढ़ी हो गई और रस्से टूट गये, क़ब्जे और कल बिगड़ गये, जिनका सब ठाठ जाता रहा, झंडा नीचा हो गया, जोड़ खुल गया, छेद के मारे जिनमें अब तैरते रहने की सामर्थ्य नही रही उन सब आभागे असमर्थों तथा निर्वासितो की यहां भीड़ है।

सावित्रीप्रसन्न चट्टोपाध्याय

सावित्रीप्रसन्न चट्टोपाध्याय एक ऐसे कवि है जो दो युगो की गोधूलि मे रहते है, कभी उनका क़दम इस युग मे रहता है तो कभी उस युग मे। 'आजो जारा मरे नाई' कविता मे वे मृत्यु पर एक अजीबोग़रीब दृष्टि डालते हैं। वे मृत्यु को अनिवार्य पाते हैं, हर घड़ी वह जैसे मनुष्य का ख़ून पीने के लिये उद्यत है। ऐसी परिस्थिति मे जो लोग जीते हैं कवि उनके ललाट पर अमृत की जयटीका देते है। यही तो पुरुषार्थ है—

आजो जारा मरे नाई, प्रज्वलित मृत्युयज्ञशाले
समिध संग्रहे व्यस्त, झञ्झाक्षुब्ध दिक्चक्रबाले
उत्कर्ण होइया आछे प्रत्यासन्न आह्वानेर लागि,
दुर्विषह दिवसेर ग्लानि ढाके अन्ध निशा जागि
विस्फारित नेत्रपाते तारा देखे नव सूर्योदय
तादेरि निर्भीक कंठे विश्व प्राण लभिबे अभय।

आजो जारा मरे नाइ मरिबार सहस कारणे,
खुँजिया पेयेछे वाणी धिक्कृत एक जीवन-धारणे
अकरुण वंचनाय अवहेलि गनिछे प्रहर
सहस्त्र लाञ्छंना माझे तुलितेछे हासिर लहर,
मरिया न मरे तारा, अनिवार्य मृत्यु पथगामी
रुधिराक्त चक्रनेमि तादेरि इङ्गते जावे थामि'
आजो जारा मरे नाई, मरिबे ना तारा कोने काले
अमृतेर जयटीका चिरांकित ताहादेरि भाले

"आज भी जो लोग नही मरे है, प्रज्वलित मृत्युयज्ञशाला में समिधि संग्रह करने मे व्यस्त है, आँधियों से क्षुब्ध क्षितिज में आनेवाली पुकार के लिये उत्कर्ण हैं। वे असह्य दिन की ग्लानि अँधेरी रात जाग कर ढकते हैं। फिर भी आँखों को विस्फारितकर वे नया सूर्योदय देखते है, उन्ही के निर्भीक कंठ से विश्व को अभय प्राप्त होता है।"

"मरने के सहस्त्र कारण से भी आज जो नहीं मरे, इस धिक्कृत जीवन को धारण करने के लिये उन्होने वाणी खोज पाई है। जब अकरुण वंचनाये आती हैं तो वे धैर्य धारणकर पहर गिनते है, सहस्त्र लाञ्छंना में वे हँसी की लहर पैदा कर देते हैं, वे मर-कर भी नही मरते, उनके इशारे से मृत्युपथगामी रुधिराक्त चक्र-नेमि ठहर जायगा। जो आज भी नहीं मरे वे कभी भी नहीं मरेंगे, अमृत की जयटीका हमेशा उनके ललाट पर अंकित है।"

इसका सारांश यह है कि आधुनिक मृत्यु की वास्तविकता को समझता है, फिर भी वह आशावादी है।'

अचिंत्यकुमार सेनगुप्त

अचिन्त्यकुमार बँगला के बहुत शक्तिशाली लेखकों में हैं। वे

बंगाल सरकार के न्याय विभाग मे नौकर है, फिर भी वे साहसी लेखकों मे समझे जाते हैं। इनकी शैली तेजस्वी तथा व्यक्तित्व-व्यंजक है, दृढ़ता की द्योतक तथा अनायास है। उपमा, व्यंजना तथा वर्णन में वे सम्पूर्ण स्वतंत्र है। ये कवि के अतिरिक्त औपन्यासिक तथा गल्पलेखक है। प्रकृति और मानव दोनों से उनका सम्बन्ध है, उनकी कविता में 'प्रकृति प्रकृति के लिये इस प्रकार की प्रकृति पूजा नही है बल्कि मानव और प्रकृति को एक ही चीज़ का दो पहेलू करके दिखालया गया है। प्रकृति उनके निकट अर्थमयी इस कारण है कि मानव है। वे कहते है—

आमार परान मुखर कोरेछे सिन्धुर कलरोले
प्रभंजनेर प्रति पदपाते आमार परान दोले
आमार पराने भाई
कोटी मानवेर अश्रुजलेर जोयार शुनिते पाई
सूर्येर बुके की भूख जागिछे आमार परान जाने
कीटेर पाखार अस्फूटतम वेदना आमारे हाने
आमार पराने भरा
ए पथचारिणी वसुन्धरार अकारण घुरे मरा

इत्यादि

'मेरी आत्मा समुद्र के कलकलनाद से मुखर है, वायु के प्रति पदक्षेप से मेरा हृदय आंदोलित होता है। अपनी आत्मा मे करोड़ों मनुष्यों के अश्रु की बाढ़ सुन पाता हूँ। सूर्य के हृदय में कौन-सी भूख है मेरी आत्मा जानती है, एक कीड़े के डैने की अस्फुटतम वेदना मुझे दुखी करती है। मेरी आत्मा मे पथचारिणी वसुन्धरा का अकारण घूमना भरा है। वनानी की वीणा में मेरा व्याकुल प्राण शब्द कर उठता है। घास की सभा मे मेरा प्राण हरा हो जाता है,

मेरे प्राण में प्रत्येक पुष्प का रंगविरंगा जादू सिहर उठता है, मेरे ही प्राण को निचोड़-निचोड़कर आकाश नील हो गया है। कहीं पर कुछ खाली नही रहा, मेरे प्राणों में विश्ववेदना का छत्ता जमा है। दीर्घश्वास की दरिया उसमे आन्दोलित हो रही है; मरुभूमि की शून्यता अन्धकार की कातर व्याकुलता, गिरी हुई कली की व्यथा वहाँ है। मेरे प्राणों मे युगान्तार की मृत्यु की निशा मूर्छित है।'

सच बात कही जाय तो इस कविता मे कुछ ऐसी बाते हैं जो रवीन्द्रनाथ का स्मरण दिलाती है।

अन्नदाशंकर राय

अन्नदाशंकर राय का जन्म उड़िष्या के ढेङ्कानल राज्य मे हुआ, विलायत मे आई० सी० एस० पढ़ते समय इन्होने पहली पुस्तक लिखी। भाषा इनकी विशेष रूप से सुन्दर है, मालूम होवा है जैसे एक-एक शब्द के पीछे साधना है। साहित्य में ये देवत्व का नही मनुष्यत्व का नारा बुलन्द करते आये। कवि से ये बड़े गल्पकार तथा औपन्यासिक है। इनका एक उपन्यास 'सत्यासत्य' अढ़ाई हजार पृष्ठो मे समाप्त हुआ है। एक कविता मे वे कवि को अपनी तस्वीरें की झोली प्रकृति से भर लेने के निमित्त पुकारते है—

ओरे कवि तोर छविर पसरा
भरिया लइबि आय
उत्सबमयी साजियाछे धरा
वसन्त नाटिकाय
आज पेये जाबि जाहा चाय मन
एतो मिठा लगा भानुर किरण
पाखिदेर सने वने समीरण
एतो शीष दिये जाय

'अरे कवि आकर अपनी तस्वीरों की झोली भर लो, वसन्त नाटिका मे पृथिवी उत्सवमयी हो रही है। आज जो चाहोगे सो ही मिलेगा, सूर्य की किरणे इतनी मीठी लगती है। वन मे चिड़ियो के साथ पवन सीटी देता जा रहा है++++। कही पर एक भी बादल नही, सब बादलों ने छुट्टी ले रक्खी है, नावों का इधर से उधर जाना बन्द है इसलिये समुद्र स्थिर है। हमारे इस हरे द्वीप के किनारे पर उसीका पानी आकर छलकता हुआ लगता है, हमारे पैरों मे उसीका मुठि्यो फेना लगता है। पेड़ो के पीले चेहरे पर तामे के रंग का सुनहलापन दौड़ गया है, विदेशी नामवाली पत्तियों ने उसको चूमने के लिये उसको घेर लिया है' इत्यादि

प्रकृति में मनुष्य के हृदयावेगो के आरोप का जो वर्णन है जिसे अंग्रेज़ी मे *pathetic fallacy* कहते है हमेशा से कवियों की एक विशेषता रही है। हम चाहे तो इसे प्रकृति मे प्राणप्रतिष्ठा कह सकते है। नये कवि इसमे अपने पहिलेवालो से पीछे नही है, किन्तु साथ ही वे इस पृथिवी को उसकी मिट्टी तक को बहुत प्यार करते है। अन्नदाशंकर इसी कविता मे कहते है—

ए जे आमादेर सेई आदरिणी
सूर्यवदना सोनार मेदिनी एर
प्रति तिल चिनि चिनि चिनि
प्रतिटी अङ्गमय।

'यह तो हमारी वही प्यारी सूर्यमुखी सोने की पृथिवी है इसके तिल-तिल तथा अंग-अंग को जानता हूँ।'

अजितकुमार दत्त

अजितकुमार दत्त ने प्रेम पर जो सनेट लिखे है वे सुन्दर हैं। सनेट लिखनेके लियेजो शब्दो की मितव्ययिता तथा सारगर्भता चाहिये वह अजितकुमार दत्त में है, किन्तु फिर भी उनका विषय एक ही

होने के कारण वे कोई बड़े कवि न हो सकेंगे। प्रेम पर लिखी हुई उनकी कवितायें आधुनिक हैं इसमें सन्देह नही। एक सनेट मे आधुनिक की निक्तता के साथ शुरू करते है —

नाहि जानि तथागत बुद्धेर बचन सत्य किना—
पुनराय जन्मलाभ आछे किना अदृष्टे आमार ;
चार्वाकेर तिक्त बाणी, 'भस्मीभूत ए देहेर आर
पुनरागमन नाइ', सत्य किना से-कथा जानि ना

'मालूम नहीं तथागत बुद्ध का बचन सत्य है कि नही, मालूम नही फिर से जन्म पाना मेरे अदृष्ट मे है कि नही, यह भी नही मालूम कि चार्वाक की कड़वी बात 'भस्मीभूत इस देह का पुनरागमन कहाँ' सच है कि नही। यदि यह जीवन अर्थ, यश या मान के बिना भी कट जाय तो मै इनके लिये फिर जन्म लेना नही चाहता। मैं नये वस्त्र की तरह देह लेकर मोक्ष की आकांक्षाकर पृथिवी मे नहीं आना चाहता।'

'मैं इस जीवन मे केवल तुम्हारा सुन्दर प्यार चाहता हूँ, मैं तुम्हारा समुद्र की तरह स्नेह चाहता हूँ। मै कविता मे उन्ही बातों का संग्रह करना चाहता हूँ जिसको किसी ने कभी नही कहा, दूसरे भला तुम्हारी बातें किस प्रकार जानेंगे ? इस जीवन मे तो तुम हो, तुम रहो, उसके बाद जब मै मर जाऊँगा तो तुम्हारा प्रेम मेरी कविता मे अमर होकर रहेगा।'

कवि को मौलिक रूप से हम रवीन्द्रयुग के कवियों से पृथक कर नही सकते, अवश्य उनको शैली मौलिक रूप से भिन्न है। दर्शन (*philosophy*) रवीन्द्रयुग से विभिन्न इस शैली के क्रान्तिकारित्व के कारण हम अजित बाबू को अति आधुनिक समझने के लिये बाध्य है। कवि का विषय अत्यन्त व्यक्तिगत प्रेम है, यह वही विषय है जिसे विद्यापति, चंडीदास, जयदेव ने अप-

नाया था, किन्तु *approach* में नूतनत्व है।

बुद्धदेव बोस

श्री बुद्धदेव बोस शायद इस समय के बँगला लेखकों मे सबसे अधिक शक्तिशाली है; गल्प, उपन्यास, कविता, नाटक, समालोचना सभी क्षेत्र मे उन्होने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। इनका एक उपन्यास 'एरा आर ओरा' अश्लीलता के जुर्म मे ज़ब्त हो चुका है। इस समय ये 'कविता' नामक कविता-विषय पत्रिका के सम्पादक भी हैं। इनकी रचना में इनकी सूक्ष्म दृष्टि का परिचय पग-पग पर मिलेगा। यह आश्चर्य की बात है कि बुद्धदेव की पुस्तकों का अभी हिन्दी मे अनुवाद नही हुआ। बुद्धदेव की 'शापभ्रष्ट' कविता बहुत लम्बी है नही तो हम उसे यहाँ पर देते, हम 'आर किछु नाहि साध' नामक उनकी कविता देते हैं, यह एक तरह से कवि की आत्मकहानी है।

आर किछु नाहि साध। जानि, मोर तरे नहे जयमाल्य
यशेर मुकुट
विश्वेर कविरा जतो ज्वलिछे नक्षत्र हये रजनीर
श्यामल-अंचले

'मेरी और कुछ साध नही है। जानता हूँ मेरे लिये न तो जयमाला है न यश का मुकुट है। विश्व के कवि नक्षत्र होकर रजनी के श्यामल अंचल मे विराजमान है वहाँ भी मेरा स्थान नही है। नील आकाश के नीचे मेरी स्तुति का गान नही मुखरित होगा +++नर-चित्त के भक्तितीर्थ मे मेरा नित्य स्वर्ग नही है, मृत्यु का कड़वा कालकूट मेरा चरम भाग्य है। मै जानता हूँ इक्कीसवी सदी की कोई सप्तदशी मेरी कविता को चाँदनी स्नात जँगले के नीचे नही पढ़ेगी।'

'फिर भी जो आज संगीत की लहर हृदय के हिम-सरोवर मे

जग रही है वह केवल तुम्हारे लिये है। तुमको जो मैंने सब अंगो मे, मर्म मे, मन में, प्राण मे पाया था, तुमको विरह के स्पन्दमान अन्धकार मे तथा मिलन वासर में पाया था यही बात मै आकाश, धरणी, घास को तथा समुद्र के कान मे कहना चाहता हूँ। इस परिपूर्णता का बोझा अकेले-अकेले मुझसे ढोया नही जाता इस-लिये हज़ारो मे अपने को लाखों गाने मे बाँटता फिरता हूँ।'

पाठक इस बात को देखेंगे कि यह कविता अजितकुमार दत्त की कविता से विभिन्न नहीं है। मैंने इस अध्याय के प्रारंभ में कहा है कि कई कारणो से अति-आधुनिक भारतीय साहित्य ने अपनी आत्मा को पूर्ण रूप से खोज नही पाया है। मार्क्स ने यह जो कहा था कि हमारा काम इस जगत की केवल व्याख्या करना नही है, बल्कि उसको बदलना है इस बात को हमारे यहाँ के लेखको ने अभी नही समझा है। हमारा साहित्य इसलिये वास्तविकता के पास आने पर भी वास्तविक नही हो पा रहा है। बुद्धदेव बोस मे लेखन-शक्ति है, सूक्ष्मदृष्टि है, भाषा का ऐश्वर्य है, फिर भी वेष्क तरह से *ideal world* याने ख्याली दुनिया मे रह-से जाते हैं। हमारे ये कवि तथा लेखक उसी श्रेणी से हैं जिससे बँगला के रवीन्द्र-युग के कवि है, देश मे चलनेवाले भयंकर उथल-पुथल को अक्सर ये समझते नहीं, कभी तो उससे बेखबर रहते है यहाँ तक कि उसकी हँसी उड़ाते भी देखे गये है। यह बात एक तरफ़ रही और दूसरी तरफ़ शोलोकोव को देखिये कि डान नदी के स्टेप (*steppes*) मे जो सामूहिक खेती में व्यवहारिक रूप से भाग लेनेवालो मे है और "टूटी मिट्टी" नामक रूसी उपन्यास के लेखक भी वही है। इसको बहुत से लोग वर्त्तमान रूस का सर्वोत्तम उपन्यास समझते है।

बुद्धदेव में इसी समझ या प्रेरणा का अभाव होने के कारण वे गुमराह होकर अश्लीलता की ओर गये। सौभाग्य से बुद्धदेव उधर से लौटे हैं, किन्तु अब भी वे राह खोज रहे हैं। बुद्धदेव

की 'व्याङ' (मेढक) नामक एक ताज़ी कविता पाठक के सामने अनुवाद मे पेश की जाती है।

"वर्षा मे ही मेढक की पाँचों ऊँगली घी मे है। पानी बरसना बन्द हुआ ही है, आकाश तो चुप है, किन्तु मेढकों का एकसाथ लगाया हुआ नारा सुनाई पड़ रहा है। उन्मुक्त कंठ का ऊँचा सुर आदिम उल्लास में बज रहा है, आज तो विच्छेद का ही, न भूख का ही, न मृत्यु का भय है। घने बादल घास हो गये, स्वच्छ पानी मैदानों में जमा है, उद्धत आनन्द गान से उत्सव का दोपहर कटता है। स्पर्शमय वर्षा आई, नया कीचड़ कितना चिकना है। मेढक मानो स्फीतकंठ वीतस्कंध संगीत का शरीरधारी सप्तम है, अहा यह मेघ की हलदी-हरी कान्ति कैसी चिकनी है। मेढक की दृष्टि काँच की तरह स्वच्छ ऊपर की ओर लगी है, अहा जैसे ध्यानमग्न ऋषि की तरह ईश्वर को खोज रहा है। पानी बरसना बन्द हो चुका, दिन खतम हो रहा है, स्तंभित आकाश मे गंभीर वन्दनागान बज रहा है। ऊँची आवाज़ धीमी हो रही है, दिन की अब आखिरी साँसे चल रही है। अन्धकार शतच्छिद्र एकच्छन्दा तन्द्रा को बुला रहा है। आधी रात मे किवाड़े बन्दकर हम आराम से बिस्तरे पर लेटे है, स्तब्ध पृथिवी मे केवल एकाकी उत्साही अक्लान्त एक ही सुर सुनाई पड़ रहा है, निगूढ़ मन्त्र का जैसे आखिरी श्लोक हो, मेढक का उच्चारित क्रोक, क्रोक, क्रोक।"

मेढक के विषय मे इतनी बड़ी कविता और उसे ईश्वरभक्त ऋषि बतलाना यह एक आधुनिक कवि का ही काम है।

हुमायुन कबीर

हुमायुन कबीर को बंगाल के बाहर लोग मुसलमानो के एक राष्ट्रीयतावादी नेता के रूप में जानते है, कोई नही जानता कि बॅगला के एक बड़े कवि है। उन्होने अपनी कुछ कविताओं का अंग्रेज़ी में अनुवाद कर विलायत मे छपाया है, अच्छी-अच्छी

पत्रिकाओं ने उनकी प्रतिभा का अभिनन्दन किया है। प्रकृति को वह सुन्दर देखते है, किन्तु जब प्रकृति और मनुष्य के स्वार्थ मे संघर्ष होता है तो यह मनुष्यो का कवि प्रकृति को आड़े हाथ लेने मे नहीं चूकते। बगाल मे गंगा की दो शाखा हो गई है एक भागीरथी, दूसरी पद्मा। पद्मा इस बात के लिये मशहूर है, कि अक्सर अपना पथ बदलती है, और जो भी गाँव वगैरह उसके रास्ते में आगये उनकी खैरियत नही। इस प्रकार पद्मा प्रकृतिका एक अद्भुत रूप है कवि ने कई कवितायें इसी पर लिखी है। मालूम होता है कवि को यह विषय उसी तरह प्यारा है जैसे दर्द वाला दाँत जीभ को, इधर-उधर गई और उस दाँत के पास पहुँच गई। हम इस कविता के कुछ उद्धरण ही दे सकते है—

बहुदिन परे आजि रोगजीर्ण आँखि दुटि मेलि
हेरिलाम तोरे।
श्रावणेर घनघटा एइ पुंज मेघेर आड़ाले
अपूर्व योगिनीवेशे मुक्तकेशे आसिया दाँड़ाले
नयनेर आगे मोर। लुब्ध क्षुब्ध ऊर्मिराशि ठेलि
चलेछे बहिया क्षुधु—आविल सलिलराशि तव
नेचे ओठे मरणेर तांडव नर्तने नव-नव—
चिरमुक्ता—धरा दिबिनाको कोनो डोरे?
शैशव-जीवन हते तोरे आमि देखितेछि नदी
पाइनाको शेष।

'बहुत दिनों बाद रोग-जीर्ण आँखो को खोलकर मैने आज तुझे देखा। श्रावण की घनघटा इस मेघपुंज की आड़ मे तू एक अपूर्व योगिनी के वेश में बाल खुली हुई हालत मे मेरे सामने खड़ी हो गई। क्षुब्ध, रुद्ध लहरो को ढकेलती हुई तू बह चलती

है। तेरा आविल जल मरण के नये-नये तांडव नर्तन मे नाच-नाच उठता है। हे चिरमुक्ता, तू किसी भी डोरी से पकड़ाई नही देगी। मै बचपन से तुझे हे नदी देख रहा हूॅ फिर भी तेरा अन्त नही पाता।'

'कभी तो शरत के प्रात.काल मे तू पूर्णवारि, शान्त और अचंचल है, कलकल-कलकल तेरा पानी चलता जाता है, कभी वैशाख की सन्ध्या मे यदि बादल आगये तो प्रलय-नर्तनछन्द से तुम्हारा प्राण नाच उठता है, तब तुम्हारे सलिल से ध्वंसलीला का गीत निकलता है, उस तुम्हारे नयनो मे करुणा का लेश नही है।'

'बालरवि की किरणो मे हे नदी मैने तुम्हारी फिर दूसरी ही हॅसी देखी है, पूर्णिमा के प्लावन मे तुम्हारे किनारे पर काशतृण फूले है, अधीर पवन मे मादक पुष्पो की गंध तैरती रहती है। तुम्हारी मुग्ध जलराशि फिर भी दौड़ती है। हृदय मे धनधान्य लेकर तथा ऑचल को वनपुष्पो से सजाकर सुहाग-लज्जा से एक किनारे से दूसरे किनारे तक मृदुवाणीपूर्ण होकर दौड़ती हुई जाती हो जैसे किसी को प्यार करती हुई दूर जा रही हो। + + + आज फिर मैने तुम्हारा यह क्या नया रूप देखा, भैरविनि की तरह बनी हुई हो, आकाश मे मेघो की घटा है। + + + + अकस्मात् तेरा स्रोत सूर्य की किरणो से छुरीकी तरह चमक उठता है, यह मानो तेरे हिंस्र दन्त तथा होठो पर कुटिल हॅसी है, तेरे निठुर नयनो मे हत्या की साध बाघ की हत्या करने की इच्छा की तरह इस शान्त स्मित आलोक मे स्पष्ट हो जाती है। तू प्रबल है, दुर्वार है, अत्याचारी है, श्यामशोभावाले देश को तोड़फोड़कर पृथिवी मे अपना झक्की पथ बनाती रहती है। तू किसी की नही सुनती, फिर भी नर क्या करे रोता है किन्तु एक दूसरे को सीने से लगाकर जीता है। बाहर विशाल विश्व अपने कठोर जाल को बिछाता रहता है, फिर भी मनुष्य बैठा रहता है सब सुख तथा दुःखों मे ऑंखें ऊपर

किये हुए।'

ऊपर जो कविता दी गई वह पुरानी है, 'पद्मा पर उनकी बिल्कुल अभी की लिखी हुई एक कविता दी जाती है।

दूरदेशे तोरे बहुदिन छिनु भुले
पद्मा मोर।
आबार शाङ्ने तोर कूले-कूले भाङ्न लेगेछे जोर?
नेमेछे वर्षा घोर।
चरेर चिह्न धुये मुछे दिये
विपुल सलिल संभार निये
यौवन तोर बोये निये जास काहार दोर?
के मनोचोर?
पद्मा मोर।

'मेरी पद्मा दूर देश मे तुझे बहुत दिनो तक भूलाकर था। फिर श्रावण आने से तेरे किनारे सब टूट रहे है, घोर वर्षा उतर आई। सूखी का चिन्ह धो-पोंछकर, विपुल सलिल संभार लेकर तेरे यौवन को बहाकर किसके दर पर ले जा रही है? किसने तेरा मन चुराया, मेरी पद्मा।'

प्रकृति और मानव का संघर्ष इस कविता मे अधिक स्पष्ट है—

सबुज मायाय भरेछे दुकूल तबो
पद्मा मोर।
जलेर किनारे एसेछे दुर्वा नव
तोबु दया नाही तोर?
अतिथि शिशुरे हासिस कि करि?
निठुर प्रहारे उठिछे शिहरी

ठिकरि पड़िछे क्षुरधार स्रोत निरन्तर
देखिते कोमल तबु एतो तोर
हिया कठोर ?

'हरी माया से तेरे दोनों किनारे भरे है मेरी पद्मा। पानी के किनारे नई दुर्वा आई है फिर भी तुझे दया नही है ? अतिथि और फिर बच्चे को इस प्रकार कही दुतकारा जाता है। तेरे निठुर प्रहारों से वह हर घड़ी सिहर उठती है, तेरे क्षुरधार स्रोत मानों निरन्तर चटक रहे हैं, देखने मे तू इतना कोमल है फिर भी तेरा हृदय इतना कठोर है मेरी पद्मा ?'

कवि फिर पद्मा से पूछता है तेरे जीवन का दर्शनशास्त्र भला क्या है, दुःख के दहन मे तू बारबार मनुष्य का नकली-असली देखना चाहती है। जीवन की धारा मन्थर हो आती है, सत्य दिन-रोज के अभ्यास से याने रोज प्रयोग मे आने के कारण लुप्त हो जाता है, वही तेरी लीला ध्वंस के उल्लास मे है। मेरी पद्मा ध्वंस के साथ ही सृष्टि का ताना-बाना है। तेरे किनारे के लोग हमेशा बद्दू (*nomad*) ही रह गये, दो दिन के लिये किनारे पर घर बाँधते हैं फिर दो दिन बाद कहाँ चले जाते हैं ?

पद्मा कविता मे कवि ने नदी को उपलक्ष्यकर मनुष्य-विरुद्ध प्रकृति को ही दिखलाया है। प्रकृति और मनुष्य का जो संघर्ष सृष्टि की आदि से चला आया है उसीकी एक झलक इस कविता मे है, वही प्रकृति एक समय कितनी सुन्दर और दूसरे समय कितनी निष्ठुर है यह इस कविता में दिखलाया गया है, किन्तु साथ ही मनुष्य किस प्रकार ज़िद्दी है, प्रकृति ने ज़रा ढील दी आगे बढ़ा, ज़रा तीव्र हो गई पीछे हट गया, यह बात पद्मा किनारे मनुष्य के *nomadic* होने से दिखलाया गया है।

आशु चट्टोपाध्याय

आशु चट्टोपाध्याय की 'यौवन-धर्मी' नामक कविता कविता

रूप में कुछ विशेष सफल न होने पर भी हम इस युग के कवियो की मनोवृत्ति का पता पाते है। वे कहते है—

आमरा यौवन-धर्मी-एई विंशो शतकेर तरुण तापस
बॉचार साधना कोरि—ठीकमतो बॉचा जाके बले—
रुटिनेर दास नई, बॉधा पथे कोभु पथ चलिबोना,
प्रथा के मानि ना मोरा, यदि सेई प्रथार पॉचिले,
मान्धातार आमलेर से प्रथार कठिन पाथरे
माथा खुॅड़े मरे आत्मा असहाय, असह्य क्षुधाय

'हम यौवन-धर्मी है, हम इस बीसवी सदी के तरुण तपस्वी हैं, जीने की साधना करते है याने ठीक तरह से जीना जिसे कहते हैं। हम रूटीन के दास नही है, लकीर के फ़कीर हम कभी नहीं हो सकते। प्रथा को हम कभी नहीं मानते, चाहे प्रथारूपी दीवार के मान्धाता के ज़माने के कठिन पत्थर मे असहाय आत्मा चाहे असह्य भूख मे सिर दे मारे।'

'हम यौवन-धर्मी हैं, कौन कहता है कि हम अपने ही हाथ के बनाये हुए कुछ लोहे के यन्त्रो के ग़ुलाम है? हम यन्त्र के प्रभु हैं, हम समूची पृथिवी के मालिक है। अपनी ही इच्छा से हम सब कुछ तोड़ते तथा बनाते है। जीवन के सभी रास्तो में हमारी अश्रान्त यात्रा है; जाड़ा, गर्मी, वर्षा मे हम मैदान के अट्टहास है।'

'हमे खाने को नही मिलता। हॅसी आती है। हममे से कितने नही पाते। हम ईश्वर के समकक्ष हैं, हम भाग्य के नियामक हैं। हमने उत्सुक तगड़े हाथो मे इस जीवन की पतवार पकड़ रक्खी है, हमे मालूम है हम कहाॅ जा रहे है। हर समय हमारे पाल के लिये हवा रहती है, यदि कभी अन्यथा हो तो जानिये कि यह क्षणिक विलास है। हम अपने भाग्य को लेकर बीच-बीच मे खेलते हैं।'

यदि मेरी कोई रात नारी के केश के गुच्छों मे मंदिर मोह के

स्वप्न मे कैदी हो तो फिर दिन में काम के आँगन में मुझे धर्माक्त हँसी की आड़ मे पाओगे। यदि किसी दिन मुझे शाल वृक्ष का सिर मृदु वायु से हिलते देखो और मुझे नक्षत्र की टिमटिमाती धीमी रोशनी मे चुप बैठे देखो, तो मुझे बुलाना मत, मैं उस समय विधाता के साथ बात करता हूँ।'

यह देखने की बात है कि इस कविता मे देश की पराधीनता का कोई ज़िक्र नही है, यद्यपि यौवन धर्म आज यदि कोई है तो उसका सबसे पहिला कर्त्तव्य इसी ग्लानि के विरुद्ध संग्राम करना है। अति-आधुनिक कविता यही पर अति-आधुनिक नही हो पाती, क्या इसकी वजह डर है? कवि लोगो को इस पर सोचना चाहिये।

महीउद्दीन

कवि महीउद्दीन आधुनिक की सबसे बड़ी विशेषता को 'बुभुक्षा' करके व्याख्या करते है। उनकी आँखो मे रूप-दृष्टि-तृष्णा है और हृदय मे तृप्तिहीन अनन्त बुभुक्षा है। उनकी समस्त इन्द्रियाँ रोकर दिन-रात कहती है कि वे भूखी है, भूखी। वे कहते है—

जड़ेर जड़ता त्यजि जीव आमि जन्म कबे लभिलाम भवे
अनन्त सृषिर माझे भूमानन्दे ज्योतिष्केर आलोक आहवे
इत्यादि

'जड़ की जड़ता त्यागकर मैं जीव इस दुनिया मे पैदा हुआ। मैंने कहा मै जड़ हूँ, जग गया हूँ, सीमाहीन शून्य को व्याप्तकर प्रतिध्वनि हुई जगा हूँ, जगा हूँ। निर्विकार निद्रा जगत में मैं न मालूम थका हुआ मुसाफ़िर कब से थककर सो रहा था और मै अपनी उन्मत्त गति का नृत्यताल भूल गया था। +++मैने इस विश्व की सराय मे पुकारा भाई मै वासना का भिखारी हूँ, रोशनी चाहता हूँ।" छाया चाहता हूँ, आनन्द से पुलकित महाप्राण चाहता हूँ।'

'जंगल काटकर मैंने सोने की नगरी बसाई। हिमालय की चोटी की ओर यात्रा की है, अगाध जालधि के बीर से मोती

निकाला है। धन और रत्न से विपुल भंडार भर लिया है। अपने ही परिश्रम से मैंने इस विशाल भोग के संसार की सृष्टि की है। ++सूर्य, चन्द्र, ग्रह नक्षत्रो के रहस्य की मैने ही खोज की है, पाताल मे राज्य फैलाया, काव्य, दर्शन, इतिहास, विज्ञान की सृष्टि की। मैने वंचित मानव के लिये साम्य, मैत्री, स्वधीनता के गीत गाये है। मैने भूख से व्याकुल निपीड़ित मानव के भूखे जठर मे रोये है, मैने निर्यातन निर्वासित के लिये फॉसी का फन्दा गले मे डालकर गाये हैं।' इत्यादि

अरुणकुमार मित्र

तरुण कवि अरुणकुमार ने 'लाल पर्चा' शीर्षक एक कविता लिखी है—

प्राचीर पत्रे पड़ोनि इस्ताहार
लाल अक्षरे आगुनेर हलकाय
झलसाबे काल जानो ?

इत्यादि

'क्यों जी तुमने दीवार पर चिपका हुआ लाल-पर्चा नहीं पढ़ा, उसके लाल हरफ़ आग की तरह रंग लायेंगे। (आकाश मे विरोध का उत्ताप घनीभूत होता है, पुरानी बातो की धार मुथरी हो गई है) युगान्त उत्कर्ण है, पढ़ो जी, ज़रा लाल पर्चे को तो पढ़ो।'

'भीड़ मे भिड़कर खोजो तो सही फ़ौज तैयार है, हथियार से लैस। कड़ी मुठ्ठियो से ज़बर्दस्ती स्वर्ग छीन लेना है, क्या देवता भी इसे रोक सकते है।'

यह कविता बहुत लम्बी है, इसको हम यहीं समाप्त करते हैं।

फुटकर कवित्रों की कविता

आगे हम कवि को विशेष महत्त्व न देकर यह दिखायेंगे कैसे-

कैसे विषय पर ताज़ी से ताज़ी बँगला कवितायें लिखी जा रही हैं।

अमूल्य चट्टोपाध्याय नामक एक कवि किस प्रकार की उपमा का व्यवहार कर रहे हैं। देखिये, शायद बँगला के पुराने कवि जब अमूल्य बाबू मरकर वहाँ जायँ तो उनके साथ रहने को इनकार करें।

> मध्यरात्रे मिडल रोडे नैशब्द्य झुलछे
> गरुर मांसेर मतो।
> निःशब्द, निःशब्द रात्रि घन मेघे।

पहिले तो बड़ी देर तक कविता मेरी समझ मे नही आई, फिर मैने सोचा इसका अंग्रेज़ी मे अनुवाद करूँ तो समझ में शायद आवे क्योकि मै जानता था आजकल के बहुत से कवि अंग्रेजी मे सोचते है। अंग्रेजी में अनुवाद करते ही कविता मेरी समझ मे आई। वह अनुवाद यों था—

> *At the dead of night silence hangs in middle road*
> *Like a piece of beef*
> *Silent, silent is the night with thick clouds*

अंग्रेज़ी मे इसलिये समझ मे आया कि *silence hangs* में *hang* शब्द हम समझ जाते है, किन्तु नि.शब्दता झूल रही है यह उतना समझ मे नही आता। यहाँ गोमांस के साथ तुलना देकर कवि ने रात्रि की निस्तब्धता की वीभत्सता दिखलाई, इसलिये इस कविता की वाक्यरचनाशैली अंग्रेज़ी की (*Anglicised*) होते हुए भी इसकी आत्मा भारतीय है क्योंकि गोमांस का बड़ा टुकड़ा एक अंग्रेज़ की आँखो मे वीभत्स नही, बल्कि उसकी जीभ से शायद लार ही टपक पड़े।

संजय भट्टाचार्य 'उद्द्य' नामक कविता में धर्म को भी पूँजी-पतियों का साथी बतलाते है।

> तोमादेर तलोयार

झलमल करियाछे पृथिवीर रोदे;
झलमल करियाछे
तोमादेर मिनारेर चूड़ा।
तादेर अनेक घाम
अनेक चोखेर जल
वहु रक्त
शुकायेछे पृथिवीर रोद,
तोमादर इतिहासे
कोनो स्मृति आसे नाइ तार
शुधु ऐसे गेछे बार बार
मिनारेर चूड़ा आर
झलमल बाँका तलोयार।

"तुम्हारी तलवारो मे तथा तुम्हारे मन्दिरों की चूड़ाओ मे पृथिवी की धूप से चार चाँद लगे है; किन्तु उनका पसीना, आँसू तथा ख़ून को इस पृथिवी की धूप ने सुखाये ही है। तुम्हारे इतिहासों में इनके इन बातों का कुछ पता नही है, केवल बार-बार तुम्हारे मीनारों की चूड़ा और चमकती हुई बाँकी तलवारो का ही बार-बार उनमें आना-जाना हुआ है। स्वर्ग मे जो देवता आये वे भी बड़े कीमती थे, वे यदि कभी कृपाकर इस पृथिवी पर तशरीफ़ लाते हैं तो तुम लोगो की स्वार्थसिद्धि के लिये। उनकी भूख की तड़प, अप-मृत्यु, तथा मिट्टी की देह देवताओं के मन्त्र से और म्लान हो जाती है, तुम्हारे मन्दिरो की डेवढ़ी मे उनका कोई चिह्न तक नही है, उनके लिये तो तुम्हारे देवता केवल मिट्टी भर हैं।"

आधुनिक मन की प्रतिक्रिया *escapism, back to the Jungle* या *rebarbariousness* में हुआ है।

सन्तोंषकुमार घोष कहते हैं—

तार चेये चलो कोनो खजुर-कुंजे
जे था ओड़े शुधु सादा बालि धू धू प्रान्ते
सार्थवाहीरा उष्ट्रेर पिठे चलेछे
पाये आँका पथ दूर दिगन्ते पालालो ?

'चलो इससे कहीं खजूरो के कुंज मे चलें, जहाॅ केवल सफेद बालू वीरानो में उड़ता है, कारवाँ चले जा रहे हैं; पदचिह्न से अंकित पथ जहाॅ निरन्तर क्षितिज में मिल जाता है।"

उँकि देवेनाको से खाने कखनो दैनिक
युद्धे कलाख चीना सैनिक मरेछे
सांहाइ-एते सांघातिक की घटलो
मालती, से सब जेने आमादेर लाभ कि ?

"वहाॅ पर दैनिक अखबार झाॅक भी नही सकते। वहाँ यह नहीं सुनना पड़ेगा कि कितने लाख चीनी सैनिक मरे है, सांघाई में सांघातिक क्या-क्या घटना हो रही है मालती, यह सब जानकर मुझे फ़ायदा क्या है ?"

शहरेर पथे कोथाय मिछिल चलेछे
धर्मघटिरा कोथाय गुलि खेये मरलो
ना हय हलोई आश्रयहीन इहूदी
आमादेर नीड़ थाकलेइ हलो अटूट

'शहर मे कहाॅ मज़दूरो का जुलूस निकला, कहाॅ हड़तालियों पर गोली चली इनसे मेरा क्या वास्ता ? सारी दुनिया के यहूदी चाहे आश्रयहीन हो जायॅ, हमारा खोता बना रहे तो बस।'

'वहाँ पथ चलते-चलते उन्मन बेकार युवक धनियो की मोटरो

के नीचे छुट्टी नही पाते, फिर हे मालती कारखानो की चिमनी के धुएँ से तुम्हारी चाँदनी मैली नही होगी।'

'बनियो और धनियो की लोभाग्नि, अन्याय तथा बारूद से हवा भर गई है, उधर जापान . है, न मालूम कब क्या गुल खिलावे। चलो इससे खजूरो के कुंज मे चलो, जापान की साधु चेष्टा सार्थक होने दो। हम एक दूसरे को लेकर सुखी होगे, भागे हुए के प्राण मे बारूद भला क्या असर करेगा।'

सच बात कही जाय तो यह प्रतिक्रिया है। आधुनिक के जीवन में जो सैकड़ो समस्याये है उनसे घबड़ाकर पलायनवाद (*escapism*) का आश्रय लेना या बीते हुए स्वर्णयुग को लौटा लाने का स्वप्न देखना (*revivalism*) कोई आश्चर्य की बात नही है। अन्याय है किन्तु वह जबर्दस्त है, उससे लड़ना मुश्किल है, लड़ने पर खतरे है, जेल कालापानी, फाँसी। ऐसी हालत मे इन काल्पनिक तथा बेखबर मतवादों के बालू मे शुतुरमुर्ग की तरह मुँह छिपाकर बैठना आश्चर्यजनक नही। आज मध्यम श्रेणी अच्छे से अच्छे बुद्धिमान् व्यक्ति इस प्रकार की अकर्मण्यता में अपना जीवन खो रहे है। इसीको कहते हैं *La Grande Trahision* याने विराट विश्वासघात, पढ़ेलिखे लोग सब कुछ समझकर भी खतरे के कारण काम से जी चुराते है यही विराट विश्वासघात का स्वरूप है।

सुभाषचन्द्र मुखोपाध्याय की एक कविता और देखिये। इसमे जमींदार के फटे हाल का वर्णन है। कैसे वह एक तरफ किसान तथा दूसरी ओर पूँजीवाद की चक्की के दो पाट के बीच पिसकर खतम होते जा रहे हैं उसको दिखलाया है।

कविता का नाम है 'अतःपर'। इस कविता मे छन्द का कहीं पता नहीं, हाँ, सीढ़ी की तरह लिखी गई है। कविता यो है

"सम्पादक को मिले

महाशय—इधर-उधर मेरी कुछ ज़मीदारी है, लेकिन इस बुरे समय मे उसे बचाना कठिन है। वंशपरम्परा के अनुसार किंकर्त्तव्य-विमूढ़ होकर जैसा ईश्वर चलाते हैं वैसा ही चलता हूँ। बरक-न्दाज़ तावेदार हैं, लगान वसूल करने की सब तरकीबे उन्हे याद है, फिर भी तीन साल से लगान वसूल कम हुआ। अदालत मे जाओ, कुछ होता नही। थोड़ी आय है सो भी रेहन के फ़साद मे है। पता नहीं अन्त मे भीख माँगना बदा है या । बेटा कलकत्ते में विद्या सीखते हैं, बोतल से उनका प्रेम है, यह पैतृक है . । विपत्ति एक ही नही, कुछ सचरित्र किन्तु बुद्धिहीन नौजवान निरक्षर किसानो को लेक्चर से मुग्ध करते हैं, इधर हम लोगो को काटो तो ख़ून नहीं। क्या ये ही साम्यवादी हैं ? फिर भी शायद अदृष्ट का चक्का घूम जाय। अंग्रेज़ प्रभुओ का हाल बुरा है, हमारे हाथ में राज्यभार आयेगा, कोई ताज्जुब नही। पूँजीपतियो का पौबारह है। विशेषकर भारतवर्ष के इकलौते नेता हैं गान्धी, जितना रुपया लगता है सब पूँजीपति देते हैं। क्यो न दें, सोचते हैं इसका भविष्य नतीजा अच्छा होगा। महाशय ज़मीं-दारी जाय तो जाय। बनिये की मौलिक प्रतिभा देशी शिल्प मे मुक्ति पायेगी। इस विषय में पत्रपाठ मुक्ति चाहता हूँ।

निवेदक बंगचन्द्र पाल ढाका"

मुझे डर है बहुत से लोग इसे कविता मानने को तैयार न होंगे, किन्तु जो कुछ भी हो यह भी एक धारा है।

रूस वर्त्तमान् समय मे एक बहुत ही बड़ा वादविवाद का विषय है, रूस बहुतो के लिये एक *bogey* सा है, उसी पर श्रीसुरेन्द्रनाथ गोस्वामी ने एक कविता लिखी है —

लाल जुजु एलो ऐ, हुशियार
दुनियार खोकाखुकु चे चामिचि कोरोनाको
चोख कान वुजे सब बुप करे शुये थाको

हुशियार

इत्यादि

"वह देखो लाल भूत (*bogey*) आ रहा है, हुशियार ? दुनिया के बच्चो चिल्लाओ मत, आँख-कान बन्दकर चुपकर सो रहो, हुशियार। हिटलर, मुसोलिनी, जापानो नोगुचि सब कहते हैं हुशियार। अंग्रेज, फ्रांसीसी सावधान होकर घूरते है, बच्चों को पकड़ने का झोला लेकर वह आया लाल भूत। हुशियार, बच्चों सो जाओ, देर न करो, देखो वह विपत्तिसूचक लालबत्ती। हुशियार। सफेद, काले, पीले सब बच्चे पड़कर सो रहो। यहूदी भगाना है, ईसामसी भी आर्य हो गये, स्वस्तिकध्वजाधारी शान्ति-सेना पुकार रही है वह आया लाल भूत हुशियार।"

इस प्रकार अब आधुनिक कविता केवल नारी की पूजा मे या देवताओ की प्रशंसा मे सीमावद्ध न रहकर मनुष्य के सभी क्षेत्रो में सभी दिलचस्पियो में अपने लिये रास्ता बना रही है। शायद इस कारण आलंकारिकों की दृष्टि से अब वह उतनी हद तक कविता नहीं रही, किन्तु अब वह जीवन के हरेक रन्ध्र मे अपनी जड़ को प्रविष्ट कराकर अपने को सजीव बनाना चाहती है, साथ ही जीवन की मिट्टी को वह अधिक सामंजस्यपूर्ण तथा उसको एक दूसरे से सम्बन्धयुक्त बनाना चाहती है। यही इस युग की कविता की विशेषता है। हाँ कही-कही इसमें अति हो रही है यह मानता हूँ, किन्तु कोई भी बाढ़ जब आती है तो सब वह जाती है, जब बाढ़ का पानी चला जाता है तो वह एक मिट्टी छोड़ जाती है, उसीमे सोना फलता है। अभी बँगला के काव्यक्षेत्र मे बाढ़पर बाढ़ आ रही है हम उस महान् प्रतीभा की प्रतिक्षा मे है जो पानी को हटाकर इसमे सोना पैदा कर सके।

इति